प्रकाशक
आचार्यरत्न देशभूषण ग्रंथमाला
कोथली ( चिक्कोडी )
बेलगाव ( कर्नाटक )

●

प्रथम आवृत्ति १९७७
द्वितीय परिवर्धित आवृत्ति १९७८



●

मूल्य : ४ रुपये

●

मुद्रक
महेन्द्र प्रिन्टर्स
६३६ मगाफा, जबलपुर

# अनुक्रम

# मंगल स्मरण

श्रीमत्परम गम्भीर स्याद्वादामोघलाक्षनम् ।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासन जिनशासनम् ॥

त्रिलोकीनाथ का शासन-जिन शासन जयवंत हो, जो अन्तरग, बहिरग श्री समन्वित है, परम गम्भीर है तथा जिसका सार्थक चिह्न स्याद्वाद है ।

श्रीमते सकलज्ञान साम्राज्य पद मीयुषे ।
धर्मचक्रभृते भर्त्रे नम ससार भीमुषे ॥

श्रीमान्, सम्पूर्ण ज्ञान साम्राज्य पद को प्राप्त, धर्मचक्र के स्वामी, ससार की भीति को दूर करते वाले तथा जगत के रक्षक जिनेन्द्र को प्रणाम है ।

क्षायिक अनन्त मेक त्रिकाल सर्वार्थ युगपदवभासम् ।
सकल सुखधाम सतत वन्देह केवलज्ञानम् ॥

क्षायिक अनन्त, अद्वितीय, त्रिकालवर्ती सम्पूर्ण पदार्थ को युगपत्त प्रकाशित करने वाले तथा पूर्ण सुख के मदिर केवल ज्ञान की मैं वन्दना करता हूँ ।

ने तीर्थंकर ऋषभनाथ के तत्वज्ञानी पुत्र भरतेश्वर के सुत होते हुए भी सम्यग्दर्शन नही प्राप्त किया। किंचित् न्यून कोडाकोडी सागर प्रमाण काल चला गया। काललब्धि आने पर सिंह की क्रूर पर्याय मे चारण ऋद्धिधारी मुनि युगल का उपदेश पाकर वह जीव सम्यक्त्वी बन गया। उस समय वह जीव अपने स्वरूप को अवगत कर सका। हृदय की मोह रूपी गांठ खुल जाने से वह अपने आत्मरत्न का दर्शन कर कृतार्थ हुआ।

सबकी गाठी लाल है लाल बिना कोई नही।
जगत भयो कगाल, गाठ खोल देखी नही।

वह आत्मा का स्वरूप वाणी के अगोचर है। वह आंखो के द्वारा भी नही दिखाई देता। वह इन्द्रियो के अगोचर है। ब्रह्मविलास मे कहा है—

भैया महिमा ब्रह्म की कैसे बरनी जाय।
वचन अगोचर वस्तु है, कहिबो वचन बनाय॥

आत्मा वाणी के अगोचर है, यह कठिनता आत्मज्ञानी प्रबुद्ध आचार्यो के ध्यान मे आई। एक शिष्य ने आचार्य परमेष्ठी से प्रश्न किया "स्वामिन्! मनुष्य की पर्याय दुर्लभ है। किस समय प्राण निकल जावे, पता नही; तब साधना कैसे की जाय?"

स्थायीति क्षणमात्र वा ज्ञायते नहि जीवितम्।
कोटे रभ्यधिक हन्त हन्तूना हि मनीषितम् ॥११-३०

क्षत्रचूडामणि

जीवन बहुत काल तक रहेगा, या वह क्षणमात्र है, यह कोई नही जानता। खेद है कि ऐसी स्थिति मे जीवो की आकाक्षाएँ करोडो प्रमाण रहती हैं।

इस समस्या का समाधान इस प्रकार किया गया, "अरे वत्स! सम्यग्दर्शन के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। मनुष्य पर्याय के सिवाय अन्य गतियो मे भी वह प्राप्त हो सकता है। पशु पर्याय मे भी यह सम्यग्दर्शन रत्न प्राप्त होता है।" बुधजन जी ने कहा है—

अभाव मे भी व्रत हितकारी है। किसी भी अवस्था मे व्रत अहितकारी नही है। विश्व पूज्य आचार्य शातिसागर महाराज एक मार्मिक बात कहते थे "व्रत धारण करने वाला स्वर्ग जायगा, वहा से वह तीर्थंकर सीमधर भगवान आदि के समवशरण मे जाकर दिव्यध्वनि को सुनकर आत्मा का स्वरूप भली प्रकार समझ सकेगा। इस हीनकाल मे महाज्ञानियो का अभाव है।" अल्पज्ञानी व्यक्ति उस आत्मा का स्पष्ट रूप कहा तक समझा सकेगा। आशाधरजी ने सागारधर्मामृत मे लिखा है, कि कलिकाल मे सच्चा उपदेश देने वाले व्यक्ति जुगनू के समान कभी-कभी द्योतमान होते हैं—"खद्योतवत् सुदेष्टारः हा द्योतन्ते क्वचित् क्वचित्।"

इस प्रकार व्रतो का महत्व जिनागम मे माना गया है। दो प्रकार के धर्म माने गये है। एक सामान्य धर्म, दूसरा विशेष धर्म। सदाचरण की महत्ता जैन धर्म की ही वस्तु नही है। सभी धर्म चरित्र-निर्माण का उच्च मूल्याकन करते हैं। इसके द्वारा व्यक्ति का जीवन समुन्नत तथा उज्ज्वल बनता है। इससे समाज तथा राष्ट्र का कल्याण होता है। चोरी का त्याग, हिसा न करना, असत्य नही बोलना, परस्त्री के प्रति मातृत्व की दृष्टि धारण करना तथा अधिक सग्रह नही करना, इन पच पापो के त्याग के विषय मे सभी धर्म सहमत हैं। इन्हे साधारण धर्म कहा गया है। भिन्न २ सप्रदायो की विविध मान्यताएँ विशेष धर्म के अन्तर्गत आती हैं।

आज विश्व का नैतिक जीवन बहुत गिर गया है। भौतिक विकास द्वारा प्राप्त विलास वर्धक सामग्री ने मनुष्य को दुराचार के कुचक्र मे फँसा दिया है। मनुष्य जीवन रूपी गाडी को दुर्घटना से बचाने के लिए सयम रूपी ब्रेक की परम आवश्यकता है। यह दुर्भाग्य की बात है कि आज कुछ लोग उच्च अध्यात्म का नामोच्चारण करते है। पुण्य जीवन वाले सत्पुरुषो की निन्दा करने मे इन्हें सकोच नही होता है। ऐसा लगता है मानो काक अपने कटु स्वर का ध्यान न रखकर कोकिल के मधुर स्वर की निन्दा कर रहा है। ये एकान्तवादी कुन्दकुन्द स्वामी रचित श्रमण वर्ग के महाशास्त्र समयसार का आश्रय ले आत्मा, शुद्धोपयोग, शुक्ल ध्यान, परमभाव की चर्चा करते हैं, और अपने हितार्थ रचित श्रावकाचार आदि के प्रति उपेक्षा धारण करते हैं।

कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार (गाथा २३७) मे कहा है . आत्मा की चर्चा करने मात्र मे काम नही बनेगा। असयमी को मोक्ष नहीं मिलता है।

कल्याण के जो काम है, उन्हे अविवेक मूलक सोनगढ का अध्यात्मवाद आत्मा के लिये अहितकारी कहता है। यही कारण है कि कानजी पथी पूंजीपति अपनी सम्पत्ति का उपयोग सर्व साधारण के हित मे लगाते हुए नही देखे जाते। जिन्होने धर्मशाला, अस्पताल, पाठशाला आदि के निर्माण रूप लोकहित के कार्य किये हैं, उन्हे कानजी पंथी हीन कर्म मानते हैं।

कानजी पथी पत्र "आत्म धर्म" वर्ष ४ अक २ पृष्ठ १६ मे लिखा है "शरीर से आत्मा को भिन्न कर देने पर अर्थात् प्राण हत्या कर लेने पर हिसा नही होती।" यह कथन जगत् मे अशाति और अराजकता को प्रेरणा देता है। इस स्थिति मे पशु वध करना, मास सेवन करना आदि हीन कृत्य दोष युक्त नही प्रमाणित होते। जैन धर्म की शिक्षा का कितना विकृत रूप वहाँ बताया गया है ?

महावीर निर्वाण के पच्चीस सौवें राष्ट्रीय महोत्सव मे 'जिओ और जीने दो' यह नारा लगाया जाता था। कानजी बाबा कहते हैं "जियो और जीने दो" ऐसा अज्ञानी कहते है। (मोक्ष मार्ग की किरण पृष्ठ १८४) तब क्या सोनगढ के ज्ञानी ऐसा कहना चाहेगे, "मरो और मारो" ? ऐसा लिखना कितना भद्दा है, यह हर एक सोच सकता है।

जैन-धर्मी तीर्थंकरो की भक्ति से प्रेरित होकर मूर्ति निर्माण आदि के सत् कर्मों को करते हैं। भगवान बाहुबली की श्रमणबेलगोला की मूर्ति का दर्शन कर कानजी स्वामी ने ११ अप्रेल सन् १९५९ को सिवनी मे आकर हमसे कहा था "बाहुबली की मूर्ति के हमने श्रमण बेलगोला मे दर्शन किये। वहा पवित्रता का रस भरा है। पुण्य और पवित्रता से परिपूर्ण मूर्ति लगी। हमने तीन बार घटा-घटा भर दर्शन किये। मूर्ति का दर्शन करके थोडी दूर वापिस आने के बाद पुन जाकर उनके दर्शन किये। अद्भुत शाति मिली। चन्द्रगिरी पर्वत पर जाकर हमने कुन्दकुन्द आचार्य का उल्लेख करने वाले शिलालेख के दो श्लोक देखे।" इससे समझदार आदमी यह जान सकता है कि बाहरी निमित्त का महत्व स्वय कानजी के उपरोक्त कथन ने स्पष्ट कर दिया। इस कथन के ठीक विरुद्ध कानजी पंथी उपदेश देते हैं - "यदि उपयोग भगवान की ओर जाता है, तो समझना चाहिए कि यमदूत दिखाई दे रहा है।" हमे प्रतीत होता है कि सयम के प्रति विपरीत

राजा साहब ने शास्त्री जी को पुरस्कार प्रदान किया। इसी प्रकार कानजी पंथी उपदेशक शास्त्रों का विपरीत अर्थ लगाया करते हैं। वास्तव मे ऐसे लोग स्वार्थ पोषण को अपना धर्म माना करते है। इन्हे सत्य से प्रेम नही है। द्रव्य दृष्टि की बात करने वाले ये लोग रुपया रूप द्रव्य को अपना इष्टदेव मानते हैं। इनका सिद्धान्त रहता है—

जैसी चले बयार पीठ पुनि तैसी कीजे।
सूरज पूरव अस्त उदय पश्चिम कह दीजे॥

खेद है, कि ऐसे विचित्र कानजी पथ के प्रचारक लोग अज्ञानी तथा भोली समाज को कुपथ की ओर ले जा रहे हैं।

इन लोगो के कथन मे और आचरण मे भयंकर विरोध देखा जाता है। ये शिक्षण शिविर लगाते हैं। अपने पंथ के अनुसार शिक्षण की व्यवस्था करते हैं। और मोक्ष मार्ग किरण पृष्ठ २१२ मे यह भी लिखते हैं कि "तीर्थंकर की वाणी से किसी को लाभ नही होता।" यदि यह बात ठीक है, तो आचार्य कुन्दकुन्द के विदेह गमन की बात क्यो करते हैं? यदि समवशरण मे दिव्य ध्वनि को सुनकर किसी को लाभ नही होता, तो समवशरण की बारह सभाओ मे क्यो श्रोता इकट्ठे होते और दिव्य ध्वनि सुनने के लिये चातक की तरह बैठते?

इस विषय मे अधिक लिखना आवश्यक नही है। हमने इस पुस्तक मे कुन्दकुन्द आचार्य की मान्यताओ को उनके शब्दो मे दिया है, जिससे सहृदय तथा बुद्धिमान पाठक यह अनुमान लगा सकेगा, कि कानजी पंथी प्रचार आचार्य कुन्दकुन्द तथा दिगम्बर जैन आम्नाय के पूर्ण विरुद्ध है।

दिवगत प० जुगल किशोर जी मुख्तार ने बहुत समय पूर्व कानजी मत के बारे मे कहा था कि यह एक नया सम्प्रदाय होने जा रहा है वह बात पूर्णत. सत्य हो गई है। उन्होने 'श्री कानजी और जिन शासन" पुस्तक मे लिखा था, "कानजी महाराज के प्रवचन बराबर एकात की ओर ढले चले जा रहे हैं और इसने अनेक विद्वानो का आपके विषय मे यह ख्याल हो चला है, कि वास्तव मे कुन्दकुन्दाचार्य को नही मानते और न स्वामी समन्तभद्र जैसे महान जैन आचार्यो को ही वे मान्य करते हैं। यह भी

अपकारे समासक्ता परस्य स्वस्य चानिशम् ।
ज्ञास्यति सिद्ध मात्मान नरा. दुर्गति गामिनः ॥ २२-९९

लोग अपना तथा दूसरो का अहित करने में तत्पर होगे, दुर्गति-गामी ऐसे भी मनुष्य हुगे अपने को सिद्ध स्वरूप मानेगे । इस आगम रूपी दर्पण मे अपना मुख देखने वालो को वस्तु स्थिति का पूरा पता चल जायगा ।

इस समय एकान्तवादी अपना भविष्य न सोचकर ईसाइयो की तरह प्रचार के साधनो का आश्रय लेकर दि० जैन आर्ष परम्परा को क्षति पहुँचा रहे हैं । धार्मिक समाज को प्रमाद छोड विशेष सावधान होकर अपनी सस्कृति तथा परम्परा की रक्षा करनी चाहिये, जिसके लिए निकलक सदृश महान आत्माओ ने अपना जीवन उत्सर्ग किया था ।

जिन्हे अपना सच्चा कल्याण इष्ट है, तथा जो सत्य पक्ष को मानने को तैयार है, उन्हे स्याद्वाद चक्र के प्रतिपादन पर शास्त्राधार से विचार करना चाहिये ।

इस पुस्तक के लिये हमारे भाई प्रोफेसर डा० सुशीलचन्द्र दिवाकर एम ए., बी. काम एल-एल बी., पी-एच डी का महत्वपूर्ण सहयोग रहा है । लेखन कार्य मे चि० सुकुमाल दिवाकर एम काम, चि० यशोवरकुमार दिवाकर, रवीन्द्रकुमार दिवाकर, आनन्दकुमार दिवाकर तथा धन्यकुमार दिवाकर ने विशेष श्रम उठाया है । चि० सिद्धार्थकुमार दिवाकर ने भी मुद्रण के कार्य मे श्रम किया है । इन्हे आशीर्वाद है ।

स्याद्वाद चक्र की प्रथम आवृत्ति लगभग चार माह के भीतर ही समाप्त हो गई । जिन भाइयो ने पच्चीस, पचास प्रतियाँ मँगाई, उनकी हम इच्छा पूर्ण करने मे असमर्थ रहे । बम्बई के वाणिज्य जगत मे सुविख्यात उद्योगपति एस. कुमार्स सस्थान के स्वामी, सम्यक्त्व, दिवाकर, पदालकृत सेठ नन्दलाल जी कासलीवाल B Com, F R. E S को हमने स्याद्वादचक्र की एक प्रति भेजी । उसका उन्होंने गहराई से मनन किया, तथा स्वय की आतरिक प्रेरणा से दूसरी आवृत्ति निकालने के लिए तीन हजार

कुदकुदस्वामी रचित पंचास्तिकाय की चौथी गाथा की टीका मे अमृतचद्र सूरि ने कहा है "द्वौ हि नयौ भगवता प्रणीतौ द्रव्यार्थिक : पर्यायार्थिकश्च। तत्र न खल्वेकनयायत्ता देशना किन्तु तदुभयायत्ता"—भगवान ने द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक रूप से दो नय कहे हैं। भगवान की देशना एक ही नय पर निर्भर नही है; किंतु वह दोनो नयो पर आश्रित है।

अध्यात्म चर्चा करते हुए एकातवादी निश्चयदृष्टि को सत्य प्रतिपादन करने वाली मानते हुए व्यवहारनय की दृष्टि को मिथ्या मानते हैं। इस कारण तत्व चितन के क्षेत्र मे गडबडी उत्पन्न हो गई है। इसलिये दोनो नयो का आगमोक्त स्वरूप जानना परम आवश्यक है।

प्रवचनसार मे गाथा १८९ की टीका में लिखा है, "शुद्ध द्रव्य निरूपणात्मको निश्चयनय। अशुद्ध द्रव्यनिरूपणात्मको व्यवहारनय.। उभावप्येतौ स्त शुद्धाशुद्धत्वेनोभयथा द्रव्यस्य प्रतीयमान त्वात्"—शुद्ध द्रव्य का निरूपण करने वाला निश्चयनय है, अशुद्ध द्रव्य का निरूपण करने वाला व्यवहारनय है। ये दोनो नय कहे गये हैं क्योंकि द्रव्य की शुद्ध तथा अशुद्ध दोनो रूप मे प्रतीत हुआ करती है। इस कथन मे यह बात सिद्ध होती है कि द्रव्य शुद्ध अवस्था और अशुद्ध अवस्था सहित पाया जाता है। एकातवादी द्रव्य को सदा ही मानते हैं। इस मिथ्या कल्पना का इससे निराकरण हो जाता है।

पचास्तिकाय मे दो प्रकार के जीव कहे है—"जीवा ससारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा। १०९"

टीका—जीवा हि द्विविधा। संसारस्था अशुद्धा निर्वृत्ता शुद्धाश्च। ते खलूभयेपि चेतनस्वभावा।

जीव दो प्रकार के हैं। ससारी जीव अशुद्ध हैं तथा मुक्त जीव शुद्ध हैं। वे दोनो प्रकार के जीव चेतना स्वरूप हैं। ससारी जीव कर्मबद्ध होने से अशुद्ध हैं। मुक्तजीव कर्मबधन से मुक्त हो जाने से शुद्ध हैं। व्यवहारदृष्टि द्वारा अशुद्ध जीव का कथन किया जाता है। निश्चयदृष्टि द्वारा शुद्धावस्था युक्त जीव का कथन किया जाता है। जब द्रव्य स्वय शुद्ध तथा अशुद्ध रूप है, तब उनका कथन करने वाले दोनो नय वस्तुग्राही होने से सत्य है। ऐसा नही है कि निश्चयनय ही सत्य है और व्यवहारनय असत्य है। एकातवादी वर्ग ने इस मौलिक तत्व को भुला दिया है।

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विभावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जिय-पज्जाया ते सहाव मिदि भणिदा ॥१५॥

मनुष्य, नारक, पशु तथा देव पर्याय विभावपर्याय हैं। कर्मरूप उपाधिरहित स्वभावपर्याय है। व्यवहारनय मनुष्य आदि अशुद्ध अवस्था को ग्रहण करता है और निश्चयनय शुद्ध अवस्था को ग्रहण करता है। ससारी जीव मे अशुद्ध पर्यायो का पाया जाना सबके अनुभवगोचर है।

निश्चयदृष्टि स्वावलम्वी होती है। उसकी प्राप्ति के पूर्व मे असमर्थ व्यक्ति को व्यवहारनय सम्वन्धी परावलम्बन की दृष्टि को स्वीकार करना हितकारी है।

मोक्ष के लिए ध्यान को अत्यत महत्वपूर्ण माना गया है। इस सवध मे तत्त्वानुशासन ग्रथ मे नागसेन मुनिराज ने कहा है—

निश्चयाद् व्यवहाराच्च ध्यान द्विविध मागमे।
स्वरूपालवन पूर्व परालवनमुत्तरम् ॥९६॥

आगम मे निश्चय और व्यवहार के भेद से दो प्रकार का ध्यान माना है। आत्मस्वरूप का आलम्बन युक्त ध्यान निश्चय ध्यान है। पर का अवलम्बन लेना अर्थात् अरहत आदि का आश्रय लेकर किया जाने वाला ध्यान व्यवहार ध्यान है।

नागसेन आचार्य ने यह अनुभवपूर्ण वात लिखी है—

अभिन्न माद्यमन्यत्तुभिन्न तत्ताव दुच्यते।
भिन्ने हि विहिताभ्यासोऽभिन्न ध्यायत्यनाकुलः ॥९७॥

निश्चय ध्यान आत्मा से अभिन्न है। आत्मा से भिन्न ध्यान को व्यवहार ध्यान कहा है। अर्हंत आदि भिन्न वस्तुओ का अवलम्बन लेकर ध्यान का अभ्यास करने वाला विना वाधा के निश्चय ध्यान करने मे समर्थ होता है। इससे यह वात स्पष्ट होती है कि पराश्रय अथवा परावलम्बन रूप दृष्टि जीव की असमर्थ अवस्था मे उपयोगी है। समर्थ होने पर निश्चयदृष्टि कल्याण प्रदान करती है।

क्या करेगा ? यदि शिक्षित होकर भी कोई अनय अर्थात् कुपथ मे प्रवृत्ति करता है, तो उसकी शिक्षा का क्या लाभ है ?

कुन्दकुन्द स्वामी ने पचास्तिकाय मे लिखा है कि—

सम्मत्तणाणजुत्त, चारित्त रागदोसपरिहीण ।
मोक्खस्स हवदि मग्गो, भव्वाणं लद्धबुद्धीण ॥१०६॥

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा रागद्वेष के क्षय रूप चारित्र युक्त है, उन लब्धबुद्धि अर्थात् क्षीणकषाय नामक द्वादशम गुणस्थान प्राप्त भव्यात्माओ को मुक्तिपथ प्राप्त होता है । इससे यह बात ज्ञात होती है कि सम्यग्दर्शन तथा निश्चयनय व्यवहारनय युगलयुक्त होते हुए भी जब तक यथाख्यातचारित्ररूप रागद्वेषरहित वीतरागता नही होगी, तब तक शिवपथ की प्राप्ति नही होगी ।

एकान्तवादी वीतरागता की बहुत स्तुति करता हुआ चारित्र से अपना सम्पर्क स्थापित करने मे प्रमादवश सकोच प्रदर्शित करता है । कुन्द-कुन्द स्वामी की वाणी का रहस्य समझने वाला यह मानता है कि बिना चारित्र-पालन के वीतरागता की परिकल्पना आकाश पुष्पो के सचय सदृश विवेक विरुद्ध परिकल्पना है । वीतरागता चारित्र सम्पन्नता का नामान्तर है ।

सार—इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सम्यग्ज्ञान के अग होने से जैसे निश्चयनय मे वास्तविकता है, उसी प्रकार व्यवहार मे यथार्थता है । दोनो नय वस्तुस्वरूपग्राही है । द्रव्य शुद्ध तथा अशुद्ध दो प्रकार की है । शुद्धद्रव्य को निश्चयनय ग्रहण करता है । अशुद्ध द्रव्य व्यवहारनय का विषय है ।

स्याद्वादविद्या का रहस्य समझने वाला व्यक्ति आगम के आधार पर इस निश्चय पर पहुँचता है, कि अपरमभाव अर्थात् धर्मध्यानरूप शुभभावयुक्त व्यक्ति व्यवहारनय की देशना का पात्र है ।

ज्ञातव्य—पचमकाल मे धर्मध्यानरूप शुभभाव होता है । शुक्लध्यानरूप शुद्धभाव नही होता, अत कुन्दकुन्द स्वामी के कथनानुसार पचमकाल मे शुद्धभावरूप शुक्लध्यान से सम्बन्धित निश्चयनय की देशना का कोई भी पात्र नही है । खेद है एकान्तवादी इस बात पर ध्यान नही देते ।

# जिनवाणी की महिमा

[ कानजी पथ की धारणा है कि मोक्ष प्राप्ति के लिए कुन्दकुन्द स्वामी का समयसार ही सदा अभ्यसनीय, पठनीय एव मननीय ग्रन्थरत्न है। अन्य शास्त्र अनुपयोगी है।

इस निवन्ध मे कुन्दकुद स्वामी की वाणी दी गई है, जो सम्पूर्ण जिनवाणी के प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग रुप अंगों का अभ्यास आवश्यक वताती हैं। वे महर्षि चारो अनुयोग तथा द्वादशाग वाणी को प्रणाम करते है।

विचारक सोचे कि कानजी पथ कुन्दकुन्द स्वामी की धर्म देशना के विरुद्ध श्रद्धा, ज्ञान तथा प्रचार कार्य करता है। यह विचित्र वात है, कि वह अपने को श्रेष्ठ कुन्दकुन्द भक्त तथा उनकी वाणी के रहस्य का ज्ञाता कहता है। आचार्यदेव समस्त जिनवाणी को प्रणाम करते है, और चारों अनुयोगो का अभ्यास आवश्यक मानते है। समयसार मार्मिक तथा सूक्ष्म बुद्धिवालों के योग्य शास्त्र है। आश्चर्य है कि उसे मदमति भी अपने अवगाहन योग्य मानते हैं। इस निवध मे आगम की सर्वज्ञ प्रतिपादित दृष्टि का वर्णन किया गया है। ]

आचार्य कुन्दकुन्द ने दर्शनपाहुड मे कहा है—

"जिण वयण मोसहमिण, विसय सुहविरेयण अमिदभूद।"
"जर-मरण-वाहि-हरण, खयकरण सव्वदुक्खाण ॥१७॥

सर्वज्ञ जिनेश्वर की दिव्यवाणी औषधिरूप है, वह विषयसुखो का परित्याग कराती है, वह अमृतमय-मरणरहित अवस्था को प्रदान करती है, अमृत सदृश मधुर भी है, वह जन्म, मरण तथा व्याधि का विनाश करती [illegible] वाणी के द्वारा सर्व दु:खो का क्षय होता है।

मे वे मुनिजनो को सम्पूर्ण श्रुतज्ञान की आराधना हेतु प्रेरणा देते हुए करते हैं—

तित्थयर भासियत्थ, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्म ।
भावहि अणुदिणु, अतुल, विसुद्ध भावेण सुयणाणं ॥९०॥

तीर्थंकर के द्वारा अर्थरूप से प्रतिपादित, गणधर देव द्वारा सम्यक्-रूप से ग्रन्थरूप मे निर्मित अनुपम श्रुतज्ञान की निर्मलभावपूर्वक प्रतिदिन भावना करो अर्थात् समस्त श्रुत को प्रणाम करते हुए यह भावना करो, कि वह श्रुतज्ञान हमे प्राप्त हो ।

समस्त जिनागम का अभ्यास आत्मा मे निर्मलता उत्पन्न करता है । यह समझना कि हमारा हित केवल अध्यात्म साहित्य द्वारा होगा, सकुचित चितन का परिणाम है । पात्र केशरी आचार्य को देवागम स्तोत्र रूप न्यायशास्त्र के सुनने से जैनधर्म मे समीचीन श्रद्धा उत्पन्न हुई थी । इस युग के विद्वानो के गुरु पूज्य न्यायवाचस्पति प गोपालदास जी वरैया की जैनधर्म मे श्रद्धा त्रिलोकसार की सूक्ष्म गणित की देशना द्वारा हुई थी । वैष्णव कुल मे उत्पन्न भद्र परिणामी ब्र बाबा भागीरथ जी की जैनधर्म मे भक्ति पद्मपुराण की मधुरकथा सुनकर उत्पन्न हुई थी । विद्यावारिधि बैरिस्टर चम्पतराय जी ने मुझसे कहा था "जैनधर्म के कर्मों का विवेचन, विशेषकर आयु कर्म का वर्णन पढकर मेरा मन वेदान्त से हटकर जैन धर्म की ओर झुका था" । इस प्रकार द्वादशाग जिनवाणी की समस्त देशना आसन्न भव्य जीव को सम्यक्त्व के उन्मुख बनाती है । महावीराष्टक के रचियता कवि भागचन्द जी समस्त जिनवाणी को 'निजधर्म की कहानी' कहते है । उनका मधुर भजन है—

साची तो गगा यह वीतराग वानी,
अविच्छिन्नधारा निजधर्म की कहानी ॥ १ ॥ टेक
जामे अतिही विमल अगाध ज्ञानपानी,
जहा नही सशयादि पक की निशानी ॥ २ ॥
सप्तभग जँह तरग उछलत सुखदानी,
सतजन मरालवृन्द रमे नित्यज्ञानी ॥ ३ ॥

मूलाचार के समय अधिकार मे कहा है

धीरो वइग्गपरो थोव पि य सिक्खिदूण सिज्झदि ।
णय सिज्झदि वेरग्ग विहीणो पढिदूण सव्व सत्थाई ॥३॥

वैराग्य सहित धीर पुरुष अल्प शिक्षा प्राप्त करके ही सिद्धि को प्राप्त करता है, किन्तु वैराग्य शून्य सर्वशास्त्रो का ज्ञाता होते हुए भी कर्मक्षय नही कर पाता ।

इस प्रसग मे समन्तभद्र स्वामी का आप्तमीमासा मे किया गया कथन मनन योग्य है ।

अज्ञानाच्चेद् ध्रुवो बन्धो, ज्ञेयानत्यान्न केवली ।
ज्ञानस्तोका द्विमोक्षश्चे दज्ञाना द्बहुतो न्यथा ॥९६॥

यदि यह कहा जाय कि अज्ञान से नियम से बन्ध होता है, तो ज्ञेय-वस्तु अनन्त हैं, उनका ज्ञान न हो सकने से कोई भी सर्वज्ञ केवली नही हो सकेगा । यदि यह कहा जाय, कि थोडा ज्ञान मोक्ष प्रदाता होगा, तब बहुत अज्ञान बन्ध का कारण होने से मोक्ष नही हो पायेगा ।

यहाँ आचार्य कहते हैं, कि अज्ञान से बन्ध होता है, ऐसी मान्यता ठीक नही है, क्योकि पदार्थो की सख्या अनन्त है । इससे अज्ञान का प्रमाण अधिक होने से सदा बन्ध होगा तब मोक्ष का अभाव होगा । इस स्थिति मे जैनशासन की दृष्टि को इस प्रकार कहा गया है—

अज्ञानात् मोहतो बन्धो नाज्ञानाद्वीत मोहत ।
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्ष स्या-दमोहान्मोहतो न्यथा ॥९८॥

मोहयुक्त अज्ञान से बन्ध होता है, वीत-मोह पुरुष के अज्ञान से बन्ध नही होता । उसी अल्पज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त होगा, जो मोह रहित है, किन्तु मोहयुक्त ज्ञान से बन्ध होगा ।

यहाँ समन्तभद्र स्वामी ने यह बात सिद्ध की है, कि ज्ञान की अधिकता या न्यूनता के साथ मोक्ष की प्राप्ति का सम्बन्ध नही है, मोह

मूलाचार के समय अधिकार मे कहा है

धीरो वइरग्गपरो थोव पिय सिक्खिऊण सिज्झदि ।
णय सिज्झदि वेरग्ग विहीणो पढिदूण सव्व सत्थाई ॥३॥

वैराग्य सहित धीर पुरुष अल्प शिक्षा प्राप्त करके ही सिद्धि को प्राप्त करता है, किन्तु वैराग्य शून्य सर्वशास्त्रो का ज्ञाता होते हुए भी कर्मक्षय नही कर पाता ।

इस प्रसग मे समन्तभद्र स्वामी का आप्तमीमांसा मे किया गया कथन मनन योग्य है ।

अज्ञानाच्चेद् ध्रुवो वन्धो, ज्ञेयानंत्यान्न केवली ।
ज्ञानस्तोका द्विमोक्षश्चे दज्ञाना द्बहुतो न्यथा ॥९६॥

यदि यह कहा जाय कि अज्ञान से नियम से वन्ध होता है, तो ज्ञेय-वस्तु अनन्त हैं, उनका ज्ञान न हो सकने से कोई भी सर्वज्ञ केवली नही हो सकेगा । यदि यह कहा जाय, कि थोडा ज्ञान मोक्ष प्रदाता होगा, तव वहुत अज्ञान वन्ध का कारण होने से मोक्ष नही हो पायेगा ।

यहाँ आचार्य कहते हैं, कि अज्ञान से वन्ध होता है, ऐसी मान्यता ठीक नही है, क्योकि पदार्थों की सख्या अनन्त है । इससे अज्ञान का प्रमाण अधिक होने से सदा वन्ध होगा, तव मोक्ष का अभाव होगा । इस स्थिति मे जैनशासन की दृष्टि को इस प्रकार कहा गया है—

अज्ञानात् मोहतो वन्धो नाज्ञानाद्वीत मोहत ।
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्ष. स्या-दमोहान्मोहतो न्यथा ॥९८॥

मोहयुक्त अज्ञान से वन्ध होता है, वीत-मोह पुरुष के अज्ञान से वन्ध नही होता । उसे अल्पज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त होगा, जो मोह रहित है, किन्तु मोहयुक्त ज्ञान से वन्ध होगा ।

यहाँ समन्तभद्र स्वामी ने यह वात सिद्ध की है, कि ज्ञान की अधिकता या न्यूनता के साथ मोक्ष की प्राप्ति का सम्बन्ध नही है, मोह

त्रिगुप्ति यथा ( मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति रूप गुप्तित्रय कहा है। गुप्ति का अन्तर्भाव चारित्र में किया है —

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ।
वद-समिदि-गुत्तिरूवं ववहारणयादु जिणभणियं ॥४५॥

अशुभ से निवृत्ति तथा शुभ में प्रवृत्ति को चारित्र जानो। जिनेन्द्र देव ने व्यवहारनय से व्रत समिति गुप्ति रूप चारित्र कहा है। मोक्ष प्राप्ति में सम्यकचारित्र की महत्वपूर्ण स्थिति है। सयोग केवली भगवान के श्रेष्ठ सम्यक्त्व के साथ पूर्ण ज्ञान भी पाया जाता है, फिर भी वे तेरहवें गुण स्थान में मोक्ष नहीं प्राप्त कर पाते। सयोग केवली का उत्कृष्ट काल देशोन एक कोटि पूर्व है। इतने काल तक श्रेष्ठ सम्यक्त्व और पूर्ण ज्ञान समलंकृत होते हुए भी उन्हें सिद्ध पद नहीं मिलता। जब सयोगीजिन योग-निरोधकर अयोग केवली होते हैं, तब पूर्ण गुप्ति हो जाने से अयोगी जिनके पूर्ण संवर होता है, और पचलघु अक्षर उच्चारण में जितना काल लगता है, उतने काल में वे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान की पूर्णता हो जाने पर भी जब तक चारित्र की पूर्णता न होगी, तब तक मोक्ष नहीं होगा, क्योंकि मोक्ष का कारण रत्नत्रय है। मोक्ष प्राप्ति में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र तीनों की एकता को कारण माना गया है।

ज्ञान की दृष्टि से पूर्ण जिनवाणी जीव का कल्याण करती है। शास्त्राभ्यास द्वारा सम्यग्ज्ञान प्राप्त होने के अनन्तर चारित्र की परिपूर्णता आवश्यक है। भेद विज्ञान की प्राप्ति, चारो अनुयोगो के अभ्यास द्वारा आसन्न भव्य जीव को हो जाती है। द्रव्यानुयोग ही मोक्ष प्रदाता है, उसमे भी समयसार का अभ्यास ही सर्वोपरि है, यह एकान्त पक्ष सत्य से दूर है।

शास्त्रज्ञान द्वारा साध्य है वीतरागता। वीतरागता की उपलब्धि एकातवादी चारित्र के बिना सोचता है। विचार करने पर ज्ञात होगा, कि चारित्र मोह का भेद राग है। चारित्र मोह का उपशम या क्षय होने पर यथाख्यात चारित्र होता है। उस चारित्र को वीतराग शब्द द्वारा कहते हैं, जैसे सिंह को मृगपति कहते हैं। सिंह और मृगपति परस्पर पर्यायवाची हैं, उनमे भेद नहीं है, इसी प्रकार वीतरागता और चारित्र की प्राप्ति एक अर्थ मे ज्ञापक हैं।

क्रूरतापूर्ण यातनायें मुझे दी जाती थी किन्तु मुझे कष्ट का भान नही होता था।"

इस सत्य घटना के प्रकाश मे विवेकी व्यक्ति के ध्यान मे समस्त जिनागम का महत्व आ जाना चाहिए।

जब शीलवती स्त्री पर कोई अत्याचार करने को तत्पर होता है, तब वह चन्दना, सीता, अन्जना आदि की जीवनी स्मरण कर अपनी आत्मा को धैर्य प्रदान करती है। उससे उसका आत्मबल जग जाता है। वीर पुरुषो और वीरागनाओ की जीवनगाथा ने भारत को स्वतन्त्र बनाने मे राष्ट्र सेवको को अपार प्रेरणा साहस तथा क्षमता प्रदान की थी। इसलिए सच्चरित्र आत्माओ के जीवन पर प्रकाश डालने वाले प्रथमानुयोग का महत्व नही भूलना चाहिए। चारो अनुयोगो मे वह प्रथम ही नही है, आत्मा को सत्पथ मे प्रवृत्त कराने मे भी वह प्रथम है, अद्वितीय है। अल्पज्ञानी तथा महाज्ञानी दोनो को हितकारी है।

यथार्थ बात यह है कि स्याद्वाद वाटिका मे जितने सुमन हैं, सभी महान सौरभ सम्पन्न तथा सौन्दर्ययुक्त है। गुलाब या कमल पुष्प आपको अच्छे लगते हैं। उन्हे आप शौक से पसन्द कीजिये, किन्तु चम्पा, मालती, मन्दार पारिजात आदि सुमन राशि का तिरस्कार न कीजिए।

एकान्तवादी वर्ग यदि सचमुच मे कुन्दकुन्द स्वामी की शिक्षा को महत्वपूर्ण मानता है, तो उसका कर्त्तव्य है, कि उनके इस कथन के रहस्य पर दृष्टि दे। उन्होने समयसार के मोक्षाधिकार मे मोक्ष का क्या हेतु है यह बात इस गाथा मे स्पष्ट की है—

बंधाणं च सहाव वियाणिओ अप्पणो सहाव च।
बंधेसु जो विरज्जदि, सो कम्मविमोक्खण कुणई ॥२९३॥

जो आत्मा के स्वभाव और बन्ध के स्वरूप को समझकर बन्ध से दूर होता है, वह सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करता है। आत्मस्वरूप का परिज्ञान द्रव्यानुयोग के अभ्यास द्वारा होगा। कर्मबन्ध का यथार्थ स्वरूप समझने के लिये गोम्मटसार कर्मकाण्ड, तत्वार्थसूत्र, षट्खंडागम, कषाय पाहुड आदि करणानुयोग के शास्त्रो का परिज्ञान उपयोगी होगा।

# निमित्तकारण का महत्व

[ जिनागम मे उपादान तथा निमित्तकारण द्वारा कार्य की उत्पत्ति मानी गई है, किन्तु कानजी पन्थ निमित्तकारण को निस्सार तथा महत्व शून्य मानता है। यह मान्यता कुन्दकुन्द स्वामी की देशना के विपरीत है। कुन्दकुन्द स्वामी ने निमित्त कारण तथा उपादान कारण को कार्य साधक स्वीकार किया है। काजी मत मे निमित्तकारण का निषेध विशेप रहस्यमय है। वस्त्र धारण करना या न करना यह बात मोक्ष मार्ग से सम्बन्ध नही रखती, ऐसी उनकी अतरग धारणा है। अपनी श्वेताम्बर मान्यता का पोपण करना निमित्तकारण के निषेध का यथार्थ रहस्य प्रतीत होता है। कुन्दकुन्द स्वामी की दृष्टि इस लेख मे स्पष्ट की गई है। ]

भगवान सर्वज्ञ वीतराग की धर्मदेशना का प्राण उसकी स्याद्वाद-दृष्टि है। एकान्त पक्ष को पकडने वाला व्यक्ति जैनधर्म के पावन रहस्य को नही जान पाता। निमित्त और उपादान कारण युगल के द्वारा कार्य होता है, यह विश्व के अनुभव गोचर बात है, आगम भी इसका समर्थन करता है। गुणभद्र स्वामी ने उत्तरपुराण मे लिखा है,

"कारणद्वय सानिध्यात् सर्वं कार्यं समुद्भव: ॥ ५३, सर्ग ७३ ॥

वाह्य अन्तरग अथवा निमित्त और उपादान कारण से समस्त कार्यों की उत्पत्ति होती है। भावी तीर्थंकर समन्तभद्र स्वामी ने भगवान वासुपूज्य के स्तवन मे कहा है, कि वाह्य और अन्तरग कारणो की सम्पूर्णता कार्यों की उत्पत्ति मे आवश्यक है, क्योकि ऐसा पदार्थ का स्वभाव है—

वाह्येतरोपाधि समग्रतेय कार्येपु ते द्रव्यगत स्वभाव. ॥ ६० ॥

( स्वयभू स्तोत्र )

इस सत्य को विस्मरण कर कुछ लोग यह कह दिया करते हैं, कि केवल निमित्त कारण की उपस्थिति रहती है। वह अकिंचित्कर हैं। कार्योत्पत्ति मे निमित्त माना जाने वाला कुम्हार यदि केवल मौजूदगी के कारण निमित्तकारण माना जाता है, तो उस समय वहाँ उपस्थित अनेक

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा ।
अंतरहेयो भणिदा दंसण मोहस्स खय-पहुदी ॥ ५३ ॥

जिनसूत्र अर्थात् जिनवाणी तथा उसके ज्ञाता सत्पुरुष सम्यक्त्व की उत्पत्ति मे निमित्त कारण है अर्थात् सहायक है। अन्तरग कारण दर्शनमोह का क्षय, उपशम आदि हैं।

यहाँ यह बात ध्यान मे रहनी चाहिए, कि शास्त्र, ज्ञान तथा सम्यक्त्व का, सहकारी कारण है। अतरग सामग्री होने पर सहायक कारण कार्य सम्पादक होता है। केवल निमित्तकारण कार्य जनक नही होगा। सूक्ति है—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्या विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥

जिसके स्वय बुद्धि न हो उसके लिए शास्त्र क्या करेगा ? नेत्रहीन व्यक्ति के लिए दर्पण से क्या लाभ होगा ?

इस कथन से यह बात अवगत करनी चाहिए, कि जिस तरह अकेला उपादान कारण कार्य की उत्पत्ति मे असमर्थ है, उसी प्रकार अकेला निमित्त-कारण भी कार्य को उत्पन्न नही करता। दोनो कारणो के होने पर ही कार्य होता है।

शास्त्र अचेतन द्रव्य होते हुए भी जीव रूप सचेतन का महान उपकार करता है। प्रवचनसार मे कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है कि आगमहीन मुनि आत्मा को नहीं जानता है।

आगम हीणो समणो णेवप्पाण पर वियाणादि ।
अविजाणतो अट्ठे खवेदि कम्माणि किध भिक्खू ॥२३३॥

आगम रहित श्रमण स्व तथा पर का यथार्थ ज्ञान नही करता है। पदार्थ को जाने बिना मुनि किस प्रकार कर्मो का नाश करेगा ?

आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार मुनि के बाह्य नेत्र है, इस प्रकार शास्त्र भी साधु के नेत्र हैं।

जैनधर्म मे कहा है कि वस्त्रधारण करने वाले तीर्थंकर भगवान को भी मोक्ष नही मिलता। मोक्ष का मार्ग दिगम्बरपना है। इसके सिवाय अन्य मार्ग मिथ्या मार्ग रूप है।

बाह्य पदार्थ भावो की मलिनता अथवा निर्मलता मे निमित्तकारण होते हैं। यदि बाह्य पदार्थ सर्वथा अकार्यकारी होते, तो तीर्थंकर भगवान अपने राजमहल मे रहते हुए ही आत्मचिंतन द्वारा मोक्ष प्राप्त कर लेते। उस स्थिति मे दीक्षा कल्याणक का अभाव होने से चार ही कल्याणक भगवान के होते।

चारित्र पाहुड मे कुन्दकुन्दाचार्य ने ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाओ मे "महिलालोयण" महिलाओ के मनोहर अगो को रागभाव पूर्वक देखना दूषण बताया है। इससे बाहरी सामग्री का अन्तरग पर प्रभाव स्पष्ट होता है।

जीव और पुद्गल के गमन मे निमित्तकारण धर्मद्रव्य, ठहरने मे अधर्मद्रव्य को निमित्तकारण माना है। यदि निमित्तकारण केवल उपस्थित रहता है और कुछ नही करता तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य के साथ आकाश और कालद्रव्य भी उपस्थित रहते हैं, तब अधर्मद्रव्य को या आकाश अथवा काल को गमन मे सहकारी कारण नही मानने मे कौनसी युक्ति दी जायेगी ?

षट्खडागम के जीवट्ठाण चूलिका प्रकरण मे प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति प्ररूपणा के सूत्र मे कहा है —

"तीहि कारणेहि पढमसम्मत्त–मुप्पादेंति, केई जाइस्सरा,
केई सोऊण केई जिणबिम्ब दट्ठूण" ॥ २९ ॥

तीन कारणो से प्रथम सम्यक्त्व मनुष्यगति मे प्राप्त होता है। कोई जातिस्मरण से, कोई शास्त्रो को सुनकर, या उपदेश को सुनकर, कोई जिन-बिम्ब का दर्शन कर सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं। इस आगमवाणी मे सम्यक्त्व के लिये जिन प्रतिमा का दर्शन भी सहकारी कारण बताया गया है।

कुन्दकुन्द स्वामी की समस्त रचनाओ का सूक्ष्मता से परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने निमित्त और उपादान दोनो कारणो

ध्यानरूप शुद्धभाव नही होता। इनसे धर्मध्यान रूप शुभभाव को धारणा करना उचित है तथा कुगति के कारण आर्तध्यान, रौद्रध्यान रूप दुर्भावो से बचने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। यह बात स्मरण योग्य है—

अशुभभाव को त्यागकर, सदा धरो शुभभाव।
शुद्धभाव भाव आदर्श हो, यह आगम का भाव॥
हिंसादिक दुर्भाव है, जिन पूजन शुभभाव।
दयादान व्रत धारकर, लागहु मोक्ष उपाव॥

एकातवादी व्यापार आदि लौकिक कार्यों मे मन, वचन, काय से प्रवृत्ति करता है, तथा धर्म कार्य एव व्रत पालन के लिए प्रमादी बन सीमधर भगवान के ज्ञान का आश्रय लेकर कहता है, जब भगवान के ज्ञान मे हमारी सयम पर्याय झलकी है, तब सयम अपने आप हो जायेगा। वह कहा करता है—

जो-जो देखी वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी कहूँ ही है नाही, काहे होत अधीरा रे॥

उन एकातवादियो के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित होता है—

क्या-क्या देखी वीतराग ने, तू क्या जाने वीरा रे।
वीतराग की वाणी द्वारा, दूर करो भव पीरा रे॥

कुन्दकुन्द स्वामी ने द्वादशानुप्रेक्षा मे इस प्रकार चेतावनी दी है—

असुहेण णिरय तिरिय, सुह उवजोगेण दिविज-णर-सोक्ख।
सुद्धेण लहइ सिद्धि एव लोय विचिंतेज्जो॥४२॥

आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान रूप अशुभ भाव वाला नारकी अथवा पशु की पर्यायो मे जाकर दुःख भोगता है। धर्मध्यानरूप शुभभाव वाला जीव स्वर्ग के अथवा मानव पर्याय के सुख भोगता है। शुक्ल ध्यानरूप शुद्धभाव वाला मोक्ष प्राप्त करता है। ऐसा लोक का स्वरूप चिंतन करना चाहिए।

द्वादश अनुप्रेक्षा का यह कथन स्मरण योग्य है —

पुत्तकलत्त णिमित्त अत्थं अज्जयदि पाव बुद्धीए।
परिहरदि दयादाण सो जीवो भमदि ससारे॥३१॥

जो जीव पाप बुद्धि द्वारा पुत्र स्त्री के हेतु धन कमाता है तथा दया और दान नही करता है, वह ससार मे भ्रमण करता है।

—❁—

# सम्यग्दर्शन का स्वरूप

सम्मत्त जो झायदि सम्माइट्ठी हवेइ सो जीवो ।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठ-कम्माणि ॥८७॥ (मोक्षपाहुड)

जो जीव सम्यक्त्व को ध्याता है, वह सम्यग्दृष्टि कहा गया है। सम्यक्त्व परिणत जीव दुष्ट आठ कर्मों का नाश करता है।

गृहस्थो के लिए जो सम्यक्त्व कहा गया है, उसका स्वरूप है, इस शका का निवारण करते हुए कुन्दकुन्द स्वामी मोक्ष पाहुड मे कहते है—

हिंसा रहिये धम्मे अट्ठारह-दोस-वज्जिये देवे ।
णिग्गथे पव्वयणे सद्दहण होइ सम्मत्त ॥९०॥

हिंसा रहित—अहिंसा धर्म, क्षुधा, तृषा, काम, रागादिदोष रहित जिनेन्द्रदेव तथा वीतराग ऋषि प्रणीत आगम मे श्रद्धा धारण करना (गृहस्थ का सम्यक्त्व कहा गया है।

यहाँ उस सन्देह का भी निवारण हो जाता है कि धर्म का क्या स्वरूप है। गृहस्थ के लिए कुन्दकुन्द स्वामी ने अहिंसा रूप धर्म का निरूपण किया है। एकान्तवादी वर्ग को यह ध्यान मे रखना चाहिये कि आगम मे धर्म की श्रोता की अपेक्षा अनेक प्रकार की निरूपणा की गई है। वस्तुस्वरूप अर्थात् आत्मस्वरूप को जहाँ धर्म कहा है, वहाँ उत्तम क्षमा आदि तथा दयाभाव को भी धर्म कहा है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा की यह गाथा धर्म की पात्र की अपेक्षा अनेक प्रकार की परिभाषाओ को स्पष्ट करती है।

वत्थु सहावो धम्मो खमादिभावो य दहविहो धम्मो ।
रयणत्तय च धम्मो जीवाण रक्खण धम्मो ॥

वस्तु का स्वभाव धर्म है। उत्तम क्षमा, मार्दव आदि दशविध धर्म है। रत्नत्रय धर्म है।

सम्यक्त्व आत्मा का गुण होने से उसका अस्तित्व इन्द्रिय गोचर नही है। कुन्दकुद स्वामी ने चारित्रपाहुड मे सम्यग्दृष्टि जीव के लक्षणो मे आर्जवभाव (सरलता), वात्सल्य, विनय, अनुकम्पा, दया, सत्पात्रदान मे प्रवीणता, जिनेन्द्र के मार्ग की प्रशसा, असमर्थ साधर्मी की अपूर्णताओ को

ने गृहस्थावस्था मे अपनी आत्मा को ऋषभनाथ भगवान की भक्ति तथा व्रताचरण द्वारा अत्यन्त शक्ति तथा विशुद्धता का केन्द्र बना लिया था। जिनेन्द्र भक्ति द्वारा उपार्जित सातिशय पुण्य के फलस्वरूप उन्होंने आदीश्वर प्रभु के समवशरण मे प्रार्थना की थी, "भगवन्! आपके गुणस्तोत्र द्वारा मुझे महान पुण्य प्राप्त हुआ। उस पुण्य के प्रसाद से मैं चाहता हूँ कि मेरे अन्तःकारण मे आपके प्रति परा (श्रेष्ठ) भक्ति का जागरण हो।" यही भाव महापुराणकार भगवज्जिनसेन ने इस प्रकार व्यक्त किया है।

भगवन् त्वद्गुण स्तोत्रात्, यन्मया पुण्यमर्जित।
तेनास्तु त्वत्पदा-भोजे पराभक्तिः सदास्तु मे॥

जिनेन्द्र भक्ति से पुण्य का बध होता है, साथ मे पापकर्म का क्षय भी होता है और पाप प्रकृतियो का सवर होता है। भ्रमवश एकातवादी भक्ति द्वारा होने वाले पापकर्म के क्षय की ओर दृष्टि नही देता, अत. वह कुपथ ग्रहण कर लेता है और अनेकान्त विद्या से दूर हो जाता है।

जयधवला टीका मे "अरहत णमोक्कार" के विषय मे कहा है, "अरहतणमोक्कारो सपहि बधादो असखेज्जगुण कम्मक्खय कारयओत्ति तत्थवि मुणीण पवुत्तिप्पसगादो। (पृष्ठ ६ भाग १) अरहत नमस्कार तत्कालीन बध की अपेक्षा असख्यातगुणी कर्म निर्जरा का कारण है, इससे मुनियो की उसमे प्रवृत्ति होती है। जिस प्रकार अग्नि मे दाहकपना, प्रकाशकपना आदि अनेक गुण पाये जाते हैं, उसी प्रकार जिनभक्ति शुभबध के सिवाय जीव के पापक्षय का भी महत्वपूर्ण कारण है। भाव पाहुड मे कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

जिणवर चरणम्बुरुह णमति जे परमभत्तिराएण।
ते जम्मवेलि मूल खणति वरभावसत्थेण॥१५३॥

जो परभक्ति युक्त अनुराग सहित जिनेन्द्र के चरण कमलो को प्रणाम करते हैं, वे निर्मलभाव रूप शस्त्र द्वारा जन्मरूप बेल के मूल को नष्ट करते हैं।

करना अपना कर्त्तव्य मानता है। मिथ्यात्व के विकार से ग्रस्त आत्मा का मन पापपूर्ण कार्यों मे खूब लगता है। वह अच्छे कामों तथा सत्पुरुषों से घृणा करता है। पापी व्यक्ति को अध्यात्मवाद रूप रसायन हजम न होने से वह विशेष कुपथगामी बनता है। यह कथन पूर्ण सत्य है—

विषयी सुख का लालची, सुन अध्यात्मवाद।
त्यागधर्म को त्यागकर करे साधु अपवाद॥

एक स्त्री का आचरण खराब था। वह दुष्टा ब्रह्मज्ञान की बातें सुन चालाक बनकर अपनी सखी से कहती है, "मैं नहीं जानती, क्यों मुझे लोग असती कहकर मेरा तिरस्कार करते हैं? ब्रह्म ही सर्वत्र व्याप्त है, वही सत्य है। उसके सिवाय और कुछ नही है। इससे मेरे मन मे अपने तथा पराये का भेद भाव नही है। मैं अपने पति तथा परपुरुष मे समानता की दृष्टि रखती हूं। इससे परपुरुष सेवन या स्वपति सेवन मे मेरी दृष्टि मे कोई भी भेद नही है।" उस ब्रह्म की बातें करने वाली कुलटा का चित्रण इस पद्य में किया गया है—

ब्रह्मैव सत्यमखिलं नहि किंचिदन्यत्
तस्मान्न मे सखि परापर-भेद बुद्धिः।
जारे तथा निजवरे सदृशोनुरागो
व्यर्थं किमर्थं मसतीति कदर्थयति॥

मुसलमानो मे सूफी लोग अध्यात्मवाद से प्रेम रखा करते हैं। एक मसूर नाम के मुसलिम हो गये हैं। वे कहते थे, तू खुदी (अहंकार) को जलाता जा और जो तुझे अच्छा लगे उस काम को कर। मसजिद को जाना जरूरी नही है; खूब डटकर शराब भी पी, खाने पीने मे कोई रोकटोक नहीं है; अनहल हक्—अहं ब्रह्मास्मि—मैं खुदा हूँ, इस बात को दिल मे रख ले। उपवास (रोजा) आदि की जरूरत नही है। उपरोक्त भाव इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

न मर भूखा, न रख रोजा, न जा मसजिद, न कर सिजदा।
वजू का तोड़ दे कूजा, शराबे शौक पीता जा॥

काल मे भी यहाँ के वातावरण से प्रभावित किसी भी व्यक्ति ने श्रावक के जिन द्वादश व्रतो का चारित्र पाहुड मे कथन किया है, पालन करने की ओर कदम नही उठाया है। यह व्रत निमुराता और सयमी की निन्दा रहस्यपूर्ण है।

यहाँ श्रावक के अहिंसा धर्म, वीतराग देव तथा जिनवाणी मे श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन का कथन किया जा चुका है। कुन्दकुन्द स्वामी ने श्रमण की अपेक्षा सम्यक्त्व का स्वरूप मोक्षपाहुड मे इस प्रकार किया है—

सद्दव्वरओ सवणो सम्मादिट्ठी हवेइ णियमेण।
सम्मत्त परिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि ॥ १४ ॥

स्वद्रव्य अर्थात् आत्मद्रव्य मे निमग्न साधु नियम से सम्यक्त्वी होता है। इस आत्म निमग्नता रूप सम्यग्दर्शन रूप परिणत श्रमण दुष्ट अष्ट कर्मो का क्षय करता है।

यहाँ दो प्रकार का सम्यक्त्व का कथन किया गया है एक श्रावक की अपेक्षा और दूसरा श्रमण की अपेक्षा। इन दोनो सम्यक्त्वो का उल्लेख दर्शन पाहुड मे कुन्दकुन्द स्वामी ने इस प्रकार किया है—

जीवादी सद्दहण, सम्मत्त जिणवरेहिं पण्णत्त।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाण हवइ सम्मत्त ॥ २० ॥

व्यवहारनय की अपेक्षा जिनेश्वर ने जीव, अजीव, आस्रवादि तत्वो का श्रद्धान सम्यक्त्व कहा है, तथा निश्चयनय की अपेक्षा आत्मा का श्रद्धान सम्यक्त्व कहा है।

आत्मा का श्रद्धान रूप सम्यक्त्व श्रमण के होता है, तथा जीवादि का श्रद्धान रूप व्यवहार सम्यक्त्व श्रावक के होता है। एकान्तवादी व्यक्ति व्रत शून्य व्यक्ति को ही, निश्चय सम्यक्त्व का पात्र कहता है। यह धारणा कुन्दकुन्द वाणी के विरुद्ध है। यह मनगढन्त मिथ्या प्रलाप है।

शंका—सम्यक्त्व के दो भेद क्यो किये गये है? हम तो सच्चा सम्यक्त्व निश्चय सम्यक्त्व को मानते हैं।

**समाधान**—जैसे जिनेन्द्र भक्त व्यक्ति की असमर्थतावश श्रावक का चारित्र तथा समर्थ आत्मा की अपेक्षा सकल सयम रूप मुनि का चारित्र

कहा है, उसी प्रकार सम्यक्त्व का भी पात्र की शक्ति तथा योग्यता के अनुसार दो प्रकार का कथन किया गया है।

शंका—हम तो पहले आत्म श्रद्धा रूप निश्चय सम्यक्त्व मानते हैं, पश्चात् व्यवहार सम्यग्दर्शन को स्वीकार करते हैं।

समाधान—यह मान्यता आगम के विरुद्ध है, जैसे यह कहा जाय, कि पहले एक व्यक्ति को दिगम्बर मुनि होकर महाव्रती बनना चाहिए, उसके बाद उसे श्रावक के एकदेश गृहस्थ धर्म को पालना चाहिए, तो ज्ञानी पुरुष हँसेंगे। इसी प्रकार निश्चय सम्यक्त्व को प्रथम स्वीकार करने के बाद व्यवहार सम्यक्त्व को स्वीकार करना उपहास की बात है। एम० ए० की परीक्षा पास करने वाले को शिशु वर्ग मे अभ्यास करने की बात सदृश निश्चय सम्यक्त्वी होने के पश्चात् व्यवहार सम्यक्त्वी होने की मान्यता है।

शंका—गृहस्थ को निश्चय सम्यक्त्व मानने मे क्या बाधा ?

समाधान गृहस्थ आर्तध्यान, रौद्रध्यान के कारण इतना असमर्थ बन जाता है, कि वह अपने सभी चिन्तनो तथा विचारो पर परिग्रह की गहरी छाया का सद्भाव पाता है। यदि वह क्षण भर भी आत्मस्वरूप का विचार करने बैठता है, तो उसकी मनोभूमि के समक्ष परिग्रह का पिशाच अपना तमाशा शुरू कर देता है। श्रेष्ठ आत्मध्यान, जिसे शुक्लध्यान कहते हैं, गृहस्थ तीर्थंकर को भी असम्भव है। धर्मध्यान रूप शुभभाव भी यथार्थ मे मुनियो के ही पाया जाताहै, गृहस्थ के उपचार से धर्मध्यान कहा है। तत्त्वानुशासन मे कहा है

मुख्योपचार भेदेन धर्मध्यान मिति द्विधा।
अप्रमत्तेषु तन्मुख्यमितरे ष्वौपचारिक ॥४७॥

मुख्य तथा उपचार के भेद से धर्मध्यान दो प्रकार का कहा गया है। अप्रमत्त गुणस्थान वाले मुनि के मुख्य धर्मध्यान होता है, उससे नीचे के प्रमत्त सयत मुनि, श्रावक तथा अव्रत सम्यक्त्वी के उपचरित धर्मध्यान होता है।

आचार्य देवसेन ने गृहस्थ के ध्यान को भद्रध्यान शब्द द्वारा कहा है—

काल में भी वहाँ के वातावरण से प्रभावित किसी भी व्यक्ति ने श्रावक के जिन द्वादश व्रतों का चारित्र पाहुड में कथन किया है, पालन करने की ओर कदम नहीं उठाया है। यह व्रत विमुखता और संयमी की निन्दा रहस्यपूर्ण है।

यहाँ श्रावक के अहिंसा धर्म, वीतराग देव तथा जिनवाणी में श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन का कथन किया जा चुका है। कुन्दकुन्द स्वामी ने श्रमण की अपेक्षा सम्यक्त्व का स्वरूप मोक्षपाहुड में इस प्रकार किया है—

सद्दव्वरओ सवणो सम्मादिट्ठी हवेइ णियमेण।
सम्मत्त परिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि ॥ १४ ॥

स्वद्रव्य अर्थात् आत्मद्रव्य में निमग्न साधु नियम से सम्यक्त्वी होता है। इस आत्म निमग्नता रूप सम्यग्दर्शन रूप परिणत श्रमण दुष्ट अष्ट कर्मों का क्षय करता है।

यहाँ दो प्रकार का सम्यक्त्व का कथन किया गया है एक श्रावक की अपेक्षा और दूसरा श्रमण की अपेक्षा। इन दोनों सम्यक्त्वों का उल्लेख दर्शन पाहुड में कुन्दकुन्द स्वामी ने इस प्रकार किया है—

जीवादी सद्दहण, सम्मत्त जिणवरेहिं पण्णत्त।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाण हवइ सम्मत्त ॥ २० ॥

व्यवहारनय की अपेक्षा जिनेश्वर ने जीव, अजीव, आस्रवादि तत्वों का श्रद्धान सम्यक्त्व कहा है, तथा निश्चयनय की अपेक्षा आत्मा का श्रद्धान सम्यक्त्व कहा है।

आत्मा का श्रद्धान रूप सम्यक्त्व श्रमण के होता है, तथा जीवादि का श्रद्धान रूप व्यवहार सम्यक्त्व श्रावक के होता है। एकातवादी व्यक्ति व्रत शून्य व्यक्ति को ही, निश्चय सम्यक्त्व का पात्र कहता है। यह धारणा कुन्दकुन्द वाणी के विरुद्ध है। यह मनगढन्त मिथ्या प्रलाप है।

शंका—सम्यक्त्व के दो भेद क्यों किये गये है? हम तो सच्चा सम्यक्त्व निश्चय सम्यक्त्व को मानते हैं।

समाधान—जैसे जिनेन्द्र भक्त व्यक्ति की असमर्थतावश श्रावक का चारित्र तथा समर्थ आत्मा की अपेक्षा सकल संयम रूप मुनि का चारित्र

कहा है, उसी प्रकार सम्यक्त्व का भी पात्र की शक्ति तथा योग्यता के अनुसार दो प्रकार का कथन किया गया है।

शंका—हम तो पहले आत्म श्रद्धा रूप निश्चय सम्यक्त्व मानते है, पश्चात् व्यवहार सम्यग्दर्शन को स्वीकार करते हैं।

समाधान—यह मान्यता आगम के विरुद्ध है, जैसे यह कहा जाय, कि पहले एक व्यक्ति को दिगम्बर मुनि होकर महाव्रती वनना चाहिए, उसके वाद उसे श्रावक के एकदेश गृहस्थ धर्म को पालना चाहिए, तो ज्ञानी पुरुष हँसेगे। इसी प्रकार निश्चय सम्यक्त्व को प्रथम स्वीकार करने के वाद व्यवहार सम्यक्त्व को स्वीकार करना उपहास की वात है। एम० ए० की परीक्षा पास करने वाले को शिशु वर्ग मे अभ्यास करने की वात सदृश निश्चय सम्यक्त्वी होने के पश्चात् व्यवहार सम्यक्त्वी होने की मान्यता है।

शंका—गृहस्थ को निश्चय सम्यक्त्व मानने मे क्या वाधा ?

समाधान गृहस्थ आर्तध्यान, रौद्रध्यान के कारण इतना असमर्थ वन जाता है, कि वह अपने सभी चिन्तनो तथा विचारो पर परिग्रह की गहरी छाया का सद्भाव पाता है। यदि वह क्षण भर भी आत्मस्वरूप का विचार करने वैठता है, तो उसकी मनोभूमि के समक्ष परिग्रह का पिशाच अपना तमाशा शुरू कर देता है। श्रेष्ठ आत्मध्यान, जिसे शुक्लध्यान कहते है, गृहस्थ तीर्थंकर को भी असम्भव है। धर्मध्यान रूप शुभभाव भी यथार्थ मे मुनियो के ही पाया जाताहै, गृहस्थ के उपचार से धर्मध्यान कहा है। तत्वानुशासन मे कहा है

मुख्योपचार भेदेन धर्मध्यान मिति द्विधा।
अप्रमत्तेपु तन्मुख्यमितरे ष्वौपचारिक ॥४७॥

मुख्य तथा उपचार के भेद से धर्मध्यान दो प्रकार का कहा गया है। अप्रमत्त गुणस्थान वाले मुनि के मुख्य धर्मध्यान होता है, उससे नीचे के प्रमत्त सयत मुनि, श्रावक तथा अव्रत सम्यक्त्वी के उपचरित धर्मध्यान होता है।

आचार्य देवसेन ने गृहस्थ के ध्यान को भद्रध्यान शब्द द्वारा कहा है—

# पुण्य पर एक दृष्टि

[ जिनागम का प्राण उसकी स्याद्वाद दृष्टि है, जिसके द्वारा सत्यामृत की उपलब्धि होती है। पुण्य कर्म और पाप कर्म दोनों आत्मा के मोक्ष गमन मे बाधक है। सिद्ध भगवान दोनो का नाश करते है।

दूसरी अपेक्षा से पुण्य और पाप मे कथचित् भिन्नता है। पाप कर्म जीव के गुण का घात करने से घातिया कहा गया है। पुण्य कर्म अघातिया है। सयोगीजिन अरहत भगवान घातिया कर्म का क्षय करते है। जब वे अयोग केवली नामक चौदहवे गुणस्थान को प्राप्त करते है, तब वे अघातिया का क्षय करते है।

आत्मा के विकास के घातक प्रथम शत्रु पाप कर्म है। अत. आगम में पापक्षय को प्राथमिकता दी गई है। कानजी पथ में पुण्य-सय की ही चर्चा होती है और पापक्षय के विषय मे मौनवृत्ति रहती है। गृहस्थावस्था मे निरन्तर कर्मों का आश्रव होता है। पुण्य का आस्रव होगा अथवा पाप का आस्रव हुए बिना न रहेगा। कुन्द-कुन्द स्वामी ने पाप के आस्रव निवारणार्थ अशुभ-भाव त्याग को अत्यन्त आवश्यक कहा है। अशुभभाव सर्वथा हेय है। पुण्यभाव कथचित् उपादेय है। पचमकाल मे शुभभाव का आलवन लेना हितकारी कहा है। उससे पुण्य का आस्रव होता है। सम्यक्त्वी सातिशय पुण्य द्वारा ऐश्वर्य अभ्युदय का स्वामी हो अन्त में रत्न-त्रय पथ पर चलकर मोक्ष पाता है। हमारा कर्त्तव्य है कि घातिया कर्मरूप पाप के बध से बचने का प्रयत्न करे। तीर्थंकर केवली भगवान के समवशरण की रचना, दिव्यध्वनि आदि सामग्री तीर्थं-कर प्रकृति नाम के पुण्य कर्म के उदय का कार्य है। अमृतचद्र स्वामी ने पुण्य को कल्पवृक्ष कहा है। पुण्य का स्वरूप अनेकान्त के प्रकाश में अवगत करना चाहिये। ]

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये नव पदार्थों का श्रद्धान आवश्यक कहा गया है। सप्त तत्वो मे पुण्य तथा पाप को जोड देने पर नव पदार्थ हो जाते है। आठ कर्मों के घातिया तथा अघातिया रूप से दो भेद कहे गए हैं। घातिया शब्द सार्थक ह। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अतराय इन चार घातिया कर्मों के द्वारा जीव के अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख तथा अनतवीर्यरूप अनतचतुष्टय का घात होता हे। अघातिया कर्मों के द्वारा आत्मगुणो का घात न होने से उन्हे अघातिया कहा जाता हे। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये अघातिया कर्म हैं। सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभनाम तथा उच्चगोत्र रूप कर्मों को पुण्य रूप अघातिया कहा जाता हे। पुण्यकम घातिया नही है। चार घातिया तथा असाता वेदनीय, अशुभ आयु, अशुभनाम तथा नीच गोत्र ये अघातिया पापकर्म हैं। अघातिया चतुष्टय की शुभ प्रकृतियां पुण्य हैं तथा सम्पूर्ण घातिया और अशुभ रूप अघातिआ पापकर्म हैं। वास्तव मे कर्म चाहे घातिया हो, चाहे अघातिया हो, पुण्य हो अथवा पाप हो, जीव को सिद्धावस्था पाने मे वाधक हैं। सिद्धचक्र को प्रमाणाजलि अर्पित हुए उन्हे कर्माष्टक रहित कहा है:—

कर्माष्टक विनिर्मुक्त, मोक्ष लक्ष्मी निकेतन।
सम्यक्त्वादि-गुणो-पेत, सिद्धचक्र नमाम्यहम्॥

पचनमस्कार मत्र मे "णमो सिद्धाण" पाठ पढते समय साधक पुण्य-पाप रूप कर्मराशि विमुक्त सिद्धो को प्रणाम करता है। शुद्धात्मा की अवस्था प्राप्ति के लिए सभी वन्धनो का क्षय आवश्यक है। कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार मे कहा है—

सौवण्णिय पि णियल, वधदि कालायस पि जह पुरिस।
वधदि एव जीव, सुहमसुह वा कद कम्म॥ १४६॥

जैसे सोने की तथा लोहे की वेडियाँ पुरुप को वाँधती हे, उस प्रकार शुभ तथा अशुभ कर्म जीव को वधन प्रदान करते है।

जिन शासन मे कर्मपने की अपेक्षा अघातिया, घातिया अथवा पुण्य पाप मे समानता होते हुए भी उनमे कथचित् भिन्नता, असमानता भी है। वगुला और हंस दोनो का रग शुभ्र है, दोनो तिर्यंच पर्याय वाले हैं किन्तु उनमे उनके गुणो की अपेक्षा भिन्नता भी है। कहावत है—

सामान्य रूप से मिथ्यात्व, अविरति, कषाय तथा योग ये चार वन्ध के कारण कहे गये हैं। जिसके मिथ्यात्व दूर हो गया है, ऐसा चतुर्थ गुण स्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि अविरति, द्वादश कषाय तथा योग के कारण निरन्तर वन्ध को प्राप्त करता है। किन्ही की ऐसी समझ है, कि सम्यग्दर्शन होते ही वन्ध नही होता, किन्तु यह धारणा साधारण सर्वज्ञ प्रणीत आगम के विरुद्ध है। जो सम्यग्दृष्टि राग, द्वेष, मोह रहित हो सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान से आगे जाकरउपशात मोह या क्षीणमोह अवस्था के ग्यारहवें या वारहवें गुणस्थान को प्राप्त करता है, उसके वन्ध का अभाव आगम मे माना गया है।

**स्मरणीय बात है —**

आगम का पूर्णरूप परिशीलन किए बिना जो निर्णय किया जाता है, वह मिथ्या रहता है। कोई कोई समयसार की इस गाथा को पढकर कहते है, सम्यक्त्वी के वन्ध नही होता—

णत्थि दु आसव वन्धो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो ॥१६६॥

सम्यकत्वी के आश्रव वन्ध नही होते। उसके आस्रव का निरोध होता है। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है। चौथे गुणस्थान वाला भी सम्यक्त्वी है, अन्तरात्मा है, और क्षीण कषाय वाला भी सम्यक्त्वी है, अन्तरात्मा है। सम्यक्त्वी दोनो हैं। सरागी होने से चौथे से लेकर दशम गुण स्थान पर्यंत सम्यक्त्वी के वन्ध होता है। क्षीणकषाय वाला वीतराग होने से बन्ध रहित माना गया है। इस बात का स्पष्ट अवबोध इस गाथा द्वारा होता है।

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मादिट्ठिस्स।
तह्मा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥१७७॥

सम्यग्दृष्टि के राग, द्वेष, मोहरूप आस्रव नहो है, अतः उसके आस्रव का अभाव हो जाने से कारण का अभाव होने से कार्यरूप वन्ध नही होता है।

समयसार मे कहा है कि ऐसा एकान्त नही है, कि सम्यक्त्वी के सर्वथा वन्ध नही होता।

"यथाख्यात चारित्रावस्थया अध स्तादवश्य—भावि राग सद्भावात् वन्ध हेतु रेव स्यात्" ( गाथा १७१ की टीका )—यथाख्यात चारित्र रूप अवस्था से नीचे अर्थात् दशम गुण स्थान पर्यंत नियम से राग भाव का

सद्भाव होने से सम्यक्त्वी का जघन्य ज्ञान गुण बन्ध का हेतु कहा गया है। आगे की गाथा मे कुन्दकुन्द स्वामी विशेप रूप से स्पष्टीकरण करते हैं—

दसण-णाण-चरित्त ज परिणमदे जहण्णभावेण।
णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण ॥ १७२ ॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र का जघन्य रूप से परिणमन होने पर ज्ञानी के विविध प्रकार का पुद्गल कर्म के साथ बन्ध होता है।

पट्खडागम सूत्र के खुद्दाबन्ध खण्ड मे कहा है, "सम्मादिट्ठि बन्धावि अत्थि अबंधा वि अत्थि" ( २।१।३६ )—चौथे गुण स्थान से सयोग केवली पर्यंत बन्ध होता है। अयोगी जिनकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि अबन्धक है।

जहाँ लोग अविरत सम्यक्त्वी के बन्ध का अभाव सिद्ध करते हैं, वहाँ भूतबलि स्वामी खुद्दाबन्ध मे लिखते है, "केवलणाणी बन्धावि अत्थि, अबन्धावि अत्थि" (२।१।२३)—सयोग केवली रूप केवल ज्ञानी बन्धक है, अयोग केवली रूप केवल ज्ञानी अबन्धक है। इस विवेचन से यह बात स्पष्ट होती है, कि जैन शास्त्रो के रहस्य को समझने के लिए स्याद्वाद दृष्टि को नही भुलाना चाहिए, अन्यथा मुसीबत मे फसना पडता है।

यह कथन ध्यान देने योग्य है, कि पचम काल मे धर्म ध्यान रूप शुभभाव होता है, शुक्लध्यान रूप शुद्धभाव की सामग्री का अभाव है। धर्म ध्यान रूप शुभभाव होने पर पुण्य का बन्ध होता है। गेहूँ का बीज बोने वाला यह कहे कि हम इक्षु रूप फल चाहते है तो ऐसी इच्छा होने मात्र से गेहूँ का बीज इक्षुरूप मे नही बदल जायगा। इसी प्रकार यदि शुभभाव रूप बीज है, तो पुण्यरूप फल प्राप्त हुए बिना नही रहेगा। इच्छानुसार परिवर्तन नहीं होगा।

कदाचित् पुण्य बन्ध से बचने के लिए शुभभाव का परित्याग किया, तो अशुभ भाव अर्थात् आर्तध्यान, रौद्रध्यान रूप सक्लेश परिणामो के कारण पाप का बन्ध ही होगा। प्रवचनसार मे कहा है—

सुह परिणामो पुण्ण असुहो पावत्ति भणियमण्णेसु।
परिणामो णण्णगदो दुक्खक्खय कारण समये ॥ १८१ ॥

कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार में कहा है कि धर्म से परिणत आत्मा का जब शुभोपयोग रूप परिणमन होना है, तब पुण्य बन्ध के फलस्वरूप जीव स्वर्ग गमन करता है तथा शुद्धोपयोगी श्रमण मोक्ष प्राप्त करता है। शुभोपयोगी को धर्मपरिणत आत्मा माना गया है। कहा भी है—

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसपओगजुदो ।
पावदि णिव्वाणसुह सुहोवजुत्तो य सग्गसुह ॥११॥

चारित्र रूप धर्म परिणत आत्मा जब शुद्धोपयोगी होता है, तब निर्वाण सुख प्राप्त होता है। जब धर्म परिणत आत्मा शुभोपयोग परिणत होता है, तब स्वर्ग सुख पाता है।

**पुण्य बंध के कारण —**

रागो जस्स पसत्थो अणुकपा ससिदो य परिणामो ।
चित्ते णत्थि कलुस्स पुण्ण जीवस्य आसवदि ॥१३५॥

धर्म परिणत सम्यक्त्वी जीव किन कार्यों से पुण्य को बांधता है, इस विषय मे पचास्तिकाय मे कहा है—

जिसके अर्हंत, सिद्ध, साधु मे भक्तिरूप प्रशस्तराग है, जिसके परिणामो मे दीन, दुखी जीवों के प्रति करुणा रूप अनुकम्पा है, तथा क्रोध, मान, माया, लोभ द्वारा जिसकी आत्मा मे होने वाली कलुषता दूर हो गई है, ऐसे जीव के पुण्य का आस्रव होता है।

**पाप के कारण :-**

पापास्रव के कारणभूत अशुभ परिणामो का स्वरूप कुन्दकुन्द स्वामी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

सण्णाओ य तिलेस्सा इदियवसदा च अट्टरुद्दाणि ।
णाण च दुप्पउत्त मोहो पावप्पदा होति ॥१४०॥

तीव्र मोहोदय जनित आहार, भय, मैथुन तथा परिग्रह रूप सज्ञा ( विषयाभिलाषा ) कृष्ण, नील, कापोत लेश्या, कषाय की वृद्धि होने से इद्रियों की दास वृत्ति, आर्तध्यान, रौद्रध्यान, दुष्ट कार्यों में ज्ञान की प्रवृत्ति होना तथा अविवेकपना रूप मोह से पाप का आस्रव होता है।

अशुभोपयोग मे धर्म का लेश भी नही पाया जाता है। धर्म विमुख

तथा सत्कार्यों से दूर होकर हीन आचार तथा विचार वाला मरकर कहाँ जाता है इस विषय मे प्रवचनसार मे कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

असुहोदयेण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो ।
दु खसहस्सेहिं सदा अभिधुदो भमदि अच्चत ॥

अशुभोपयोग के फलस्वरूप जीव कुमनुष्य, पशु, नारकी होकर हजारो व्यथाओ से पीडित होता हुआ ससार मे निरन्तर भ्रमण करता है ।

**विशेष कथन**—भाव सग्रह मे देवसेन आचार्य ने एक विशेष बात लिखी है—

पुण्ण पुव्वायरिया दुविह अक्खति सुत्त उत्तीए ।
मिच्छत्त-पउत्तेण कय विवरीय सम्मत्तजुत्तेण ।।३९९॥

परमागम मे पूर्वाचार्यो ने दो प्रकार का पुण्य कहा है, एक मिथ्यात्वी द्वारा सचित, दूसरा सम्यक्त्वी द्वारा सचित पुण्य ।

मिथ्यादृष्टि का पुण्य ससार परिभ्रमण का हेतु है कहा भी है—

कुच्छिमभोए दाउ पुणरवि पाडेइ ससारे ।।४०२॥

पुण्य मिथ्यात्वी को कुत्सित भोग प्रदान कर पुन ससार मे गिरा देता है ।

**सम्यक्त्वी का पुण्य**—सम्यक्त्वी जीव का पुण्य कैसा होता है, इसे कहते हैं—

सम्मादिट्ठी पुण्ण ण होई ससारकारण णियमा ।
मोक्खस्स होइ हेउ जइवि णियाण ण सो कुणई ।।४०४॥

सम्यक्त्वी का पुण्य ससार का कारण नही होता है । यदि वह निदान नही करता है, तो वह पुण्य परम्परा से मोक्ष का हेतु होता है ।

तीर्थंकर भगवान को सर्वप्रथम आहार देने वाला ऐसी अलौकिक पुण्य सम्पत्ति का स्वामी होता है, कि वह उस भव मे अथवा तीसरे भव मे मोक्ष प्राप्त करता है । जहाँ मिथ्यात्वी जीव सचित पुण्य के फल से वैभव धनादि को पाकर मान कषाय के आधीन हो अनर्थ पूर्ण कार्यों को करने तथा अन्य पाप सम्पादक प्रवृत्तियो मे लगकर आगे कुगति मे जाता है, वहाँ सम्यग्दृष्टि जीव समृद्धि वैभव को पाकर उसका उपयोग रत्नत्रय पोषक कार्यों मे लगाता हुआ अभ्युदयो को प्राप्त करता हुआ साक्षात तीर्थंकर आदि का समागम पाकर भोगो से विरक्त हो चक्रवर्ती भरत महाराज के समान मुनि अवस्था को प्राप्त करता है तथा साम्यभाव के प्रसाद से मुक्ति श्री का स्वामी बनता है ।

शका—पुण्य कर्म का भेद है। कर्म आत्मा का शत्रु है, अत: मोक्ष-मार्ग मे पुण्य का कोई भी उपयोग नही हो सकता। आत्म पोषण के द्वारा जीव मोक्ष की स्थिति को प्राप्त करता है।

समाधान—पुण्य के विषय मे अनेकान्त दृष्टि से काम लेना होगा। पुण्य अनात्म वस्तु है, उससे आत्म हित नही हो सकता यह बात एक अपेक्षा से ठीक है। दूसरी दृष्टि से मोक्ष के लिए पुण्य की भी बहुत आवश्यकता है। एक उदाहरण है—एक लकडहारे को जगल काटना था। कुल्हाडी उसने प्राप्त कर ली, किन्तु कुल्हाडी के बैट के लिए लकडी आवश्यक थी। उसने जगल के वृक्षो से कहा, आपके पास काष्ठ का अक्षय भडार है। मुझ गरीब को एक छोटी सी लकडी देने की कृपा करें। उसकी प्रार्थना पर एक वृक्ष ने लकडी का टुकडा दे दिया। उस काष्ठ का सयोग पाकर लकड़हारे ने सारा जगल समाप्त कर दिया। इसी प्रकार मोक्ष हेतु मनुष्यायु, उच्चगोत्र, वज्र वृषभनाराच सहनन युक्त शरीर तथा सातावेदनीय रूप पुण्य कर्म जरूरी है। आज पचमकाल मे यदि वज्र वृषभनाराच सहनन रूप सामग्री मिल जाती, तो पुरुपार्थी वीतराग मुनिराज शुक्लध्यान तथा शुद्धोपयोग द्वारा कर्मों का नाशकर मोक्ष गए विना न रहते। इससे पुण्य कर्म को कथचित् उपादेय, कथचित् अनुपादेय मानना उचित है.

मुनिराज सब परिगह का त्यागकर तथा पुण्योदय से प्रदत्त सामग्री त्यागकर रत्नत्रय धर्म की साधना करते है। गृहस्थ की स्थिति दूसरी है। उसका मन भोगों तथा विपय वासना मे फँसा है, उसका सारा समय पाप धन सचय तथा इद्रियो की तृप्ति करने के कार्यों मे लगता है। यदि उसके पास पूर्व सचित पुण्य का भण्डार है, तो अल्प प्रयत्न द्वारा उसको काम्य सामग्री प्राप्त हो जाया करती है। कदाचित पुण्य की सामग्री नही है, तो दिन रात श्रम करने पर भी वह आवश्यक सामग्री नही पाता है। जिसके पास पुण्य है, वह सर्वत्र सुरक्षित रहा करता है। आचार्य करते है—

वने रणे शत्रु जलाग्नि मध्ये महार्णवे पर्वत मस्तके वा।
सुप्त प्रमत्त विपमस्थित वा रक्षन्ति पुण्यानि पुरा कृतानि ॥

वन मे, युद्ध मे शत्रु, जल, अग्नि से घिर जाने पर, महासमुद्र मे पर्वत के शिखर पर, सोते हुये, प्रमत्त दशा मे, विकट परिस्थिति मे पूर्व सचित पुण्य राशि रक्षा करती है।

चारित्र मोहोदय से महाव्रती बनने मे असमर्थ गृहस्थ को आगम मे ऐसा मार्ग बताया है, कि उसका आश्रय लेने से वह अभ्युदयो का स्वामी होते हुए क्रमश: आत्मविकास की साधन सामग्री भी प्राप्त कर लेता ह तथा अनुकूल सामग्री पाकर वह वीतराग मुनि होकर शुक्लध्यान रूपी प्रचण्ड अग्नि मे पुण्य-पाप सभी कर्मो को भस्म कर मोक्ष प्राप्त करता है।

कर्मों के विनाश का यथार्थ मार्ग ध्यान है। उस ध्यान की उज्ज्वलता पर आत्मा का विकास निर्भर है। जयधवला टीका मे वीरसेन स्वामी ने कुन्दकुन्द स्वामी की यह गाथा रयणसार से उद्धृत की है—

णाणेण झाणसिद्धी झाणादो सव्वकम्मणिज्जरण ।
णिज्जर फल च मोक्ख णाणाब्भा स तदो कुज्जा ॥१५७॥

ज्ञान द्वारा ध्यान की सिद्ध होती है, ध्यान से सम्पूर्ण कर्मो की निर्जरा होती है, निर्जरा का फल मोक्ष है, अत ज्ञानाभ्यास करना चाहिए।

जिस आत्मा को पुण्य का नाश करना है उसे शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि प्रज्वलित करनी होगी। पचास्तिकाय मे कहा है—

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोग परिकम्मो ।
तस्स सुहासुह डहणो झाणमओ जायए अगणी ॥१४६॥

जिसके राग, द्वेप, मोह का अभाव हो गया है, जिसके योगो का निरोध हो चुका है, उसके शुभ तथा अशुभ अथवा पुण्य एव पाप का नाश करने वाली ध्यानमयी अग्नि प्रदीप्त होती है। ऐसी अग्नि चौदहवे गुणस्थान मे प्राप्त होती है।

पाप परित्याग की आवश्यकता —

चोरी, जुआ, सुरापान, वेश्यासेवन, परस्त्री सेवन, शिकार खेलना तथा मास भक्षण रूप सप्तव्यसन रत व्यक्ति का मलिन मन, आत्मा का ध्यान तो दूर की बात है, सामायिक करने की भी सामर्थ्य रहित हो जाता है। एकान्तवादी जिन पद्मनदि आचार्य की सिद्ध पूजा को बडे प्रेम और आदरभाव से पढता है, उन महर्षि ने पद्मनदि पचविंशतिका मे कहा है—

सामायिक न जायेत् व्यसन म्लानचेतसः ।
श्रावकेण तत साक्षात्त्याज्य व्यसन सप्तकम् ।।

व्यसनो से मलिन चित्त व्यक्ति के सामायिक ( आत्मचिंतन ) नही होता है, अत श्रावक को सप्त व्यसनो का त्याग करना चाहिए।

सूक्ष्मता से विचार किया जाय, तो कहना होगा जैनधर्म की आचार शुद्धि का मूल लक्ष्य मनोशुद्धि के लिए सामग्री प्रस्तुत करना है। कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचन सार मे कहा है कि दिगम्बर श्रमण हुए बिना सम्पूर्ण दु खो का क्षय नही होता।

पडिवज्जदु सामण्ण जदि इच्छदि दुक्ख परिमोक्ख ।।२०१।।

यदि दु ख से पूर्णतया छुटकारा पाना चाहते हो तो श्रमण पद (मुनिपना) को स्वीकार करो।

गृहस्थ जीवन का ईमानदारी तथा बारीकी के साथ अन्त परीक्षण किया जाय, तो कहना होगा, कि वहाँ यथार्थ हित सम्पादन सम्भव नहीं है। शास्त्र मे कहा है—

प्रतिक्षण द्वद्वशतार्त चेतसा तथा दुराशाग्रह पीडितात्मनाम् ।
नितम्बिनी लोचन चारु सकटे गृहाश्रमे नश्यति स्वात्मनो हितम् ।।

गृहस्थ की अवस्था मे मानव सच्चा आत्महित सम्पादन नही कर पाता है। प्रतिक्षण हजारो प्रकार की चिन्तायें पीडा देती रहती हैं, दुराशा-रूप कुग्रह व्यथा दिया करता है। स्त्री के नयन रूप मोह वर्धक सामग्री गृहस्थ को घेरे रहती ह। आत्मस्वरूप का चिंतवन करने की उपयुक्त सामग्री के अभाव मे आत्मध्यान की चर्चा आकाश के पुष्पो की माला बनाने की मधुर किन्तु विवेकविहीन कल्पना मात्र है।

ध्यान की सामग्री —तत्वानुशासन मे कहा है—

सग त्याग. कषायाणा निग्रहो व्रत धारण ।
मनोक्षाणा जयश्चेति सामग्री ध्यान जन्मने ।। ७५ ।।

सम्पूर्ण परिग्रहो का त्याग करना, क्रोधादि कषायो का दमन करना, व्रतो का धारण करना, मन तथा इन्द्रियो को वश मे करना ध्यान धारण करने की सामग्री है ।

ज्ञान वैराग्य रज्जूभ्या नित्यमुत्पथ वर्तिनः ।
जित चित्तेन शक्यन्ते धर्तुमिन्द्रिय वाजिन ॥ ७७ ॥

जिसने अपने मन को वश मे कर लिया है, वह सदा कुमार्ग गामी इन्द्रिय रूपी घोडो को ज्ञान तथा वैराग्य रूपी रस्सियो द्वारा नियत्रण मे रख सकता है ।

**उपयोगी शिक्षा—**

गृहस्थ अपनी मर्यादा, असमर्थता तथा पात्रता का ध्यान न कर पचमकाल के धर्मध्यान रूप शुभभाव धारण करने की योग्यता सम्पन्न मुनियो से भी आगे बढकर पुण्य क्षय की कल्पना करता हुआ धर्माचरण की गगा मे अपने मन को स्नान न कराकर पापरूपी वैतरिणी मे गोता लगाता है तथा शान्ति के पथ से सुदूर होता जाता है । अध्यात्म विद्या के पारदर्शी महर्षियो ने जीवन शोधन हेतु पाप परित्याग का सर्वप्रथम उपदेश दिया है । मानव का कर्त्तव्य है, कि वह अपने गौरवपूर्ण नाम के अनुरूप पापरूपी अग्निदाह से स्वय का रक्षण करे । महान विद्वान् बनने की आकाक्षा रखने वाला सर्वप्रथम शिशु वर्ग की कक्षा मे अभ्यास करता है । जिन्होने सयम तथा आत्मदर्शन द्वारा अपनी आत्मा को समलकृत किया है, उन मुनिजनो के चरणो की अपने मनोमन्दिर मे पूजा करता हुआ जो गृहस्थ पाप प्रवृत्ति का त्याग करता है, तथा जिनेन्द्र की भक्ति गगा मे डुबकी लगाकर मन को स्वच्छ बनाता है, वह सच्चा मुमुक्षु बनकर आत्मविकास के पथ पर प्रगति करता है ।

गृहस्थ के कर्मो का आश्रव सदा होता है तथा होता रहेगा । यदि पापप्रवृत्ति का त्याग हुआ, तो पाप का आश्रव न हो पुण्य का आश्रव होगा तथा सचित पापराशि का क्षय होगा । कदाचित पापाचार का पथ पकडा तो पुण्यास्रव बन्द हो जायेगा, तब वह पाप का उदय आने पर नरक मे कष्ट पायेगा । जैनधर्म मे किसी भी जीव को रियायत नही दी गई है । आगामी

महापद्म तीर्थंकर होने वाले क्षायिक सम्यक्त्वी महाराज श्रेणिक का जीव पूर्व मे मुनि के गले मे सर्प डालने की पाप प्रवृत्ति के कारण नरक मे कष्ट भोग रहा है। ऐसी स्थिति मे श्रावक को सर्वज्ञ शासन मे प्रगाढ श्रद्धा धारण कर पूजा आदि छह आवश्यक कर्मों के द्वारा नरभव सफल करने की दिशा मे पूर्णतया उद्यत रहना चाहिए।

सत्पथ—समन्तभद्र स्वामी ने महत्वपूर्ण मार्गदर्शन किया है। गृहस्थ सम्पत्ति के पीछे चक्कर लगाता फिरता है। यदि उसने अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अचौर्य तथा अपरिग्रह का रास्ता पकडा तो गरीब होते हुए भी वह समृद्धि के शिखर पर पहुँचेगा। ऐसा न कर यदि चोरी, हिंसा, बेइमानी, दुराचार की प्रवृत्ति मे वह लगा, तो पास की सम्पत्ति का क्षय होकर वह दुःख की ज्वाला मे स्वय को भस्म कर देगा।

जैनधर्म स्याद्वादी है। गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह पाप परित्याग के पथ का पथिक बने। सर्वोदय तीर्थ के प्रणेता जिनेश्वर का कथन है कि दुर्गति मे पतनकारी पाप प्रवृत्तियो से अपनी रक्षा करे और दान पूजादि सत्प्रवृत्तियो का आश्रय ग्रहण करे।

निष्कर्ष—इस काल मे तद्भवमोक्षगामी चरमशरीरी मनुष्य नही होते। शुक्लध्यानरुप शुद्धभाव का अभाव है। धर्मध्यान रुप शुभभाव ही हो सकेगा। भावलिगी महामुनि इस काल मे सातवें गुणस्थान से ऊपर नही पहुँच पाते हैं। उनके कर्मों का आस्त्रव होता रहता है। वे मिथ्यात्व और अविरति रूप आस्रव के कारण रहित हैं, किन्तु प्रमाद, कषाय तथा योग-जनित उनके कर्मों का आगमन नही रुक सकता। असयमी सम्यक्त्वी गृहस्थ के अविरति आदि जनित आस्रव हो जाता है। श्रुत केवली भद्रबाहुस्वामी भी चरमशरीरी न होने से धर्मध्यान द्वारा पुण्य का सचय कर देवगति को प्राप्त हुए। इस विषय मे तत्त्वानुशासन का कथन ध्यान देने योग्य है।

तथाह्य चरमागस्य ध्यानमभ्यस्यतः सदा।
निर्जरा सवरश्च स्यात् सकलाशुभकर्मणाम् ॥ २२५ ॥

अचरमशरीरी सदा ध्यान के अभ्यासी योगी के अशुभ कर्मों की निर्जरा तथा सवर होता रहता है।

आस्रवति च पुण्यानि प्रचुराणि च प्रतिक्षणम् ।
यै· महर्धि· भवत्येषः त्रिदशः कल्पवासिपु ।। २२६ ।।

उस योगी के प्रतिक्षण महान पुण्य कर्म का आस्रव हुआ करता है, उस पुण्य के प्रसाद से वह कल्पवासी देवो मे महर्धिक देव होता है ।

ततोवतीर्य मर्त्येपि चक्रवर्त्यादिसपदः
चिर भुक्त्वा स्वय मुक्त्वा दीक्षा दैगवरी श्रित ।। २२७ ।।

स्वर्ग से चयकर वह चक्रवर्ती आदि की सम्पति का चिरकाल पर्यंत भोगकर उसे स्वयं त्याग करके दिगम्बर दीक्षा को धारण करता है ।

वज्रकाय. स हि ध्यात्वा शुक्ल ध्यान चतुर्विधम् ।
विधूयाष्टापि कर्माणि श्रयतेमोक्षमक्षयं ।। २२९

वज्रवृषभ सहनन धरी वह मुनि चार प्रकार के शुक्लध्यानो का ध्यान करके तथा आठ कर्मो का क्षयकर के अविनाशी मोक्ष को प्राप्त करता हे ।

इस प्रकार का जीवन वृत्त विवेकी सम्यग्ज्ञानी व्यक्ति का रहता है । देश काल, परिस्थिति, सहनन आदि को ध्यान मे रखने वाले ज्ञानी गृहस्थ सच्चेदेव, गुरु तथा शास्त्र की श्रद्धा करके पाप परित्याग तथा सचय के पथ पर प्रस्थित होते हैं । पाप-पुण्य का क्षयकर सिद्ध पदवी पाना उनका अतिम साध्य रहता है, किन्तु प्रारम्भिक स्थिति मे कपायादिवश कर्म राशि आती है, उसमे से प्रथम कार्य पापास्रव को रोकना तथा अशुभ की निर्जरा का प्रयत्न करते जाना हे तथा पुण्य सग्रह करना है । पाप की वैतरिणी मे डुबकी लगाने वाले गृहस्थ का पुण्य वन्ध का विरोध करना एकान्तवादी का काम है । स्याद्वादी कर्मो के क्षय हेतु प्रथम पाप क्षय के रास्ते को स्वीकार करता है । इस पचम काल मे आत्मा को हिंसादिपाप कार्यो के परित्याग तथा दान पूजा आदि सत्कार्यों को प्राथमिकता देना उचित है ।

चेतावनी—कुन्दकुन्द स्वामी सचेत करते हैं—

असुहादो णिरयाऊ सुहभावादो दु सग्गसुहमाओ ।

दुहसुहभाव जाणइ ज ते रुच्चेइ त कुज्जा ।। ५२ ।। रयणसार ।

अशुभभाव से नरकायु का बन्ध होता है, शुभभाव से स्वर्ग सुखप्रद आयु का बन्ध होता है। इस तरह नरक में दुःख तथा स्वर्ग में सुख जीव को अशुभ तथा शुभभाव से मिलते हैं। जो बात तुझे रुचे उसे तू कर।'

---

१ अन्य धर्मों में भी पाप को दुःखप्रद तथा त्याज्य कहा है। पुण्य जीवन को सुख जनक तथा पालने योग्य माना है। बौद्ध ग्रन्थ धम्मपद में कहा है—श्रावस्ती में एक चुन्दसूकरिक गृहस्थ था। उसने जीवन भर सूकरों का वध किया। अन्त में सूकर की तरह चिल्लाते हुए मरकर वह नरक में उत्पन्न हुआ। इस प्रसग परबुद्ध ने कहा—

इध सोचति पेच्च सोचति पापकारी उभयत्थ सोचति ॥ १-१० ॥

पापी इस लोक में शोक करता है, परलोक में भी शोक करता है। पापी उभय लोक में शोक करता है।

श्रावस्ती में एक धार्मिक उपासक था। उसने जीवन भर पुण्य कर्मों को करके मरकर देव लोक में जन्म लिया। इस बात पर बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा—

इध मोदति पेच्च मोदति कत पुञ्जो उभयत्थ सोचति ॥
इध मोदति सोपमोदति दिस्वा कम्मविसुद्धिमत्तनो ॥ १-११ ॥

पुण्य कर्म करने वाला इस लोक में आनन्द पाता है, परलोक में भी सुखी होता है वह दोनों लोकों में मुदित होता है। वह अपने विशुद्ध कर्मों को देखकर मोद करता है। प्रमोद करता है ( धम्मपद ५९ )

विश्व के धर्मों का साहित्य इस का समर्थन करता है, कि पापी व्यक्ति हीन अवस्था को पाकर दुःख भोगा करता है। जो पाप का परित्याग कर पुण्य जीवन व्यतीत करता है, वह दोनों लोकों में सुख पाता है। सदाचार को प्राण मानने वाला स्वय सुखी रहता है तथा विश्व को भी आनन्द प्रदान करता है।

# स्याद्वाद चक्र

अत्यतनिशित धार दुरासद जिनवरस्य नयचक्रम् ।
खण्डयति धार्यमाण मूर्धान झटिति दुर्विदग्धानाम् ।'

यह जिनेश्वर का स्याद्वाद चक्र (नयचक्र) महान कष्ट से प्राप्त होता है। इस चक्र की धार अत्यन्त पैनी होती है। इसको धारण करने वाला अत्यन्त शीघ्र मिथ्याज्ञान के अहकार युक्त व्यक्तियो के मस्तक को विदीर्ण कर देता है। अर्थात यह उनके मिथ्याज्ञान का क्षय कर देता हे।

ससार मे तीन सौ तिरेसठ प्रकार की मिथ्या मान्यताओ वाले मूढ जीव अविवेक तथा मिथ्यात्व से प्रेरित हो अपनी आत्मा को कुगति मे डालते है तथा दूसरे भी अभागे प्राणियो को वे कुपथ मे लगाते है। वे "अघे गुरु, लालची चेला दोनो नरक मे ठेलम ठेला"; यह कहावत चरितार्थ करते हैं।

एकान्तवाद की महामारी जैन समाज मे फैल रही है और समाज का अहित कर रही है। एकान्तवादी वर्ग को स्याद्वाद चक्र की शक्ति को स्मरण कर विवेक से काम करना चाहिए। मिथ्यात्वी के पतन की बात उनके ध्यान मे रहनी चाहिए।

[ एकान्तवादी लोग अनेक प्रकार की कपोल कल्पित आगम वाधित वातो का प्रचार कर मिथ्या ज्ञान की ओर जनसाधारण के मन को मोडा करते है। हमने कुछ प्रश्नो का उल्लेख कर उस सम्वन्ध मे आगम की दृष्टि समाधान रूप मे प्रस्तुत की है। जैनधर्म के रहस्य को समझने के लिए स्याद्वाद दृष्टि का अवलवन लेना वुद्धिमत्ता है। वही सच्चा मार्ग है। एकान्त पक्ष कुगतिप्रद है। यह जिनेश्वर का स्याद्वाद चक्र एकान्तवाद का नाश करता हे।]

शिखरजी पहुचते है, तो वे वहाँ अधिक से अधिक समय देने का प्रयत्न करते है। सघ के सचालक या गृहस्थ होने के कारण कदाचित शिखरजी मे अधिक रुकना सम्भव न भी हो, किन्तु विदेह मे रुकने मे कोई भी बाधा नही थी, कारण कोई सघ सचालक नही था। मुनीश्वर होने से कोई लौकिक झझट भी नही हो सकती।

**गहरा माया जाल**—यदि कानजी बाबा को विदेह मे अपनी राजकुमार पर्याय, चपा बहिन आदि का उनकी स्त्री होना स्मरण है, तो यह भी तो स्मरण होगा कि दिव्यध्वनि की भाषा प्राकृत, अपभ्रश थी या वह अनक्षरी थी। कितने बार दिव्य ध्वनि खिरती थी। मुख्य प्रश्नकर्त्ता गृहस्थ का क्या नाम था, मुख्य गणधर कौन थे ? विदेह के लोगो की ऊँचाई, भोजन आदि के बारे मे भी जाति स्मरण उद्बोधन करा देता। इस विषय मे वे चुप हैं। अत जाति स्मरण आदि की बात शत प्रतिशत असत्य तथा कल्पना-जाल मात्र है।

तीर्थंकर सीमधर भगवान की दिव्य ध्वनि को सुनकर आत्मज्ञान प्राप्त करने वाला सम्यक्त्वी नियम से स्वर्ग जाता, कारण अविरत गुणस्थानवर्ती सम्यक्त्वी मनुष्य मरण कर स्वर्ग ही जाता है, यदि उसने आयुबन्ध नही किया है। मनुष्यायु का बधक मानव मरकर भोगभूमिका मनुष्य होता, तथा सौराष्ट्र मे जन्म धारण नही करता।

यह बात भी विचारणीय है कि विदेह मे दीर्घायु मनुष्य होते हैं; जिनकी एक कोटि पूर्व प्रमाण आयु आगम मे कही है। आश्चर्य है कि दो हजार वर्ष के भीतर ही तथाकथित राजकुमार ( वर्तमान स्वामीजी ) विदेह से यहाँ मरणकर कैसे आ गए ? शिष्या चपाबेन का भी शीघ्र मरण विदेह मे कैसे हो गया ? यह याद है क्या ?

यह भी सोचना चाहिए कि, तीर्थंकर के चरणो के समीप तत्वज्ञान रूप अमृतपान करने वाला जन्म से सम्यक्त्वहीन परिवार मे कैसे उत्पन्न हुआ और कैसे बहुत समय तक मिथ्या साधु बनकर उस जीव ने धर्म के विपरीत प्रचार किया ? यदि पूर्व के उच्च सस्कार होते, तो वह व्यक्ति इद्रियो की दासता को छोडकर हीन प्रवृत्ति के त्यागरूप सदाचार को अवश्य ग्रहण करता। उदाहरणार्थ आचार्य शातिसागर महाराज पूर्वभव के उच्च सस्कारी

थे । इससे वचपन से ही उनके मन मे वैराग्य के भाव विद्यमान थे और वे दीक्षा लेकर मुनि वनना चाहते थे, यद्यपि अपने पिता श्री भीमगौडा पाटील के कहने से वहुत समय तक गृह त्याग नही कर सके थे ।

\ कानजी पथी वर्ग मे मिथ्या वातें प्रचारित की जाती है । जिससे उनके पथ का अधिक प्रचार हो ।

आत्मधर्म के कानजी (८७ वी) जयन्ती अक मे अनेक असत्य वातो का वर्णन पढकर आश्चर्य होता है कि अपने मिथ्यात्व प्रेरित पक्ष को पुष्ट करने के लिए किस प्रकार माया तथा असत्य का आश्रय लेते हैं । कानजी अपने भक्तो से कहते हैं "मेरा यह भव तीर्थंकर प्रकृति का वन्ध" करने से पूर्व का भव है अर्थात् अगले मनुष्य भव मे तीर्थकर प्रकृति का वन्ध होगा । साक्षात् तीर्थंकर भगवान के समवशरण मे चपा वहिन ने यह वात सुनी है । गुरु देव ने चपा वहिन से कहा, वहिन यह हकीकत सत्य है । मुझे भी कई वार ऐसा भास होता था उसका स्पष्ट हल नही मिलता था । उसका अर्थ समझ मे आया, कि मैं तीर्थंकर का जीव हूँ ।"

वे अपने जीवन के वारे मे वताते हैं "१७ वर्ष की उमर मे रामलीला देखकर उनके हृदय मे वैराग्य की मस्ती चढ गई । विक्रम सवत् १९७८ मे ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी के दिन स्वाध्याय करके वे लेटे, तो ओंकार ध्वनि का नाद व साढे वारह करोड वाजो की ध्वनि का स्मरण हुआ ।" (पृष्ठ १८) 'तीर्थकर के साथ' लेख मे एक भक्त इस प्रकार स्तुति करता है, 'उनका वर्तमान जीवन देखो, तो चैतन्य भगवान की झनक से भरा है । उनका भावी जीवन देखो तो भगवान से सम्वन्धित । यदि हम ज्ञान को मात्र चार-भव तक लम्वाकर देख सकें तो हमे गुरुदेव के वदले मे साक्षात् "सूर्य" के समान तेजस्वी तीर्थंकर के दर्शन होते हैं (पृष्ठ २४)" । एक अविवेक मूर्ति भक्त लिखता है "अनत तीर्थकर हो गये, मगर अपने तो गुरुदेव श्री सवने अधिक है ।" (पृष्ठ ४२) आजकल अनेक व्यक्ति स्वय को भगवान कहकर अपनी पूजा करवा रहे हैं ।

यदि पाठक गहराई से सोचे, तो उपरोक्त वाते मोह रूपी मदिरा पीने वालो की वहक सदृश है । मिथ्यात्व का आश्रय लेने वाला, मिथ्यात्व का प्रचार करने वाला एकान्तवादी का आगामी भव अधकार पूर्ण ज्ञात

होता है। इस प्रसंग मे महापुराण का यह कथन वस्तु-स्थिति को समझने मे विशेष लाभप्रद रहेगा। भगवान ऋषभदेव दश भव पूर्व महाबल नाम के राजा थे। उनके चार मन्त्री थे। आगम पक्ष का समर्थक स्वयंबुद्ध मन्त्री कुछ उच्चभव धारण कर मोक्ष गए। मिथ्यात्व का समर्थन करने वाले महामति और सभिन्नमति मन्त्री द्वय निगोद मे गए। शतमति मिथ्यात्व के परिपाक मे नरक गया, "गतः शतमति. श्वभ्र मिथ्यात्व परिपाकत" (१० – ८)। इस सम्बन्ध मे महाकवि जिनसेन स्वामी कहते है।

तमस्यधे निमज्जति सज्ज्ञान द्वेपिणो नराः।

आप्तोपज्ञ मतोज्ञान वुधोभ्यस्येद अनारतम् ॥ १०–१० ॥

सम्यग्ज्ञान के द्वेपी व्यक्ति नरक रूपी गाड अधकार मे निमग्न होते हैं, इसलिए वुद्धिमान पुरुषों को आप्त प्रतिपादित सम्यग्ज्ञान का सदा अभ्यास करना चाहिये। दस कोडा कोडी सागर के अवसर्पिणी काल मे भरत क्षेत्र से अगणित मुनि मोक्ष गए, किन्तु चौवीस ही आत्माओ ने तीर्थंकर प्रकृति रूप महान पुण्य का वन्धकर रत्नत्रय की समाराधना कर मोक्ष प्राप्त किया। कुन्दकुन्द स्वामी के तीर्थंकर होने का उल्लेख नही है। केवल मोक्ष जायेंगे, यह भी ज्ञान नही है, किन्तु मिथ्यात्व की मदिरा पान करने वाले, पिलाने वाले मोक्ष जायगे और अगले भव मे तीर्थंकर प्रकृति का वध करेंगे, यह कथन असत्य की पराकाष्ठा है। वे भव्य हैं, या अभव्य है, यह सर्वज्ञ देव ही वता सकेगे। मिथ्या मार्ग प्रचारक राजा वसु के पतन के प्रकाश मे मे इस समस्या का सच्चा समाधान मिलेगा।

[ ३ ]

शंका—निश्चयनय रूप पवित्र दृष्टि को धारण करने वाली आत्मा मोक्ष जाती है। समयसार मे कहा है—

"णिच्छय णयासिदा पुण मुणिणो पावति णिव्वाण ॥ २७२ ॥

निश्चयनय का आश्रय लेने वाले मुनिगण निर्वाण प्राप्त करते है। निश्चयनय आत्मा को शुद्ध, मानता है, अवद्ध मानता है, व्यवहार दृष्टि अपरमभाव वालो के कही है। परमभाव वाले शुक्लध्यानी निश्चय दृष्टि का

अवलम्बन ले सिद्ध पदवी पाते है। हम कानजी पथी निश्चयनय की चर्चा करते है। उसका निरूपण करने वाले परम आगम रूप समयसार को पढते है, आप भी तो निश्चयनय को हमारे समान पूज्य मानते हो, समयसार ग्रथ को भी ग्रथराज स्वीकार करते हो, तब आप हमारे विरुद्ध हो हल्ला क्यो मचाते हो ?

समाधान—यह बात पूर्ण सत्य है कि निश्चयनय की दृष्टि मोक्ष प्रद है, किन्तु यह सत्य भी आपको शिरोधार्य करना चाहिए, कि निश्चय दृष्टि के पूर्व व्यवहारनय की भी आवश्यकता है। शक्ति की अपेक्षा आप आत्मा को शुद्ध अबद्ध कहते हैं, इसमे कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु आप अपनी वर्तमान अशुद्ध, बद्ध, ससारी पर्याय को अस्वीकार करते है। अत. आपकी मान्यता स्याद्वाद दृष्टि से बाधित होती है। हम सबका यह प्रत्यक्ष अनुभव है कि हम अल्पज्ञानी है। ज्ञान का एक अश हमारे पास है। अज्ञान के सागर मे हम डूबे हैं। हमारी शक्ति बहुत कम है। अनत शक्ति का पता नही है। दु खो से आक्रात होने से यह हम कैसे कह दें, कि हम सिद्ध भगवान के समान अव्याबाध अनत सुख भोगते है ? सर्वज्ञोक्त आगम पर विश्वास कर हम यह मानते है, कि यदि हमने चार घातिया कर्मों का क्षय कर दिया, तो हम अनत ज्ञानी आदि बन सकते हैं; अभी अनत ज्ञानी नहीं हैं। शक्ति और व्यक्ति अर्थात् शक्ति का व्यक्त हो जाना इसमे अतर है। आगम मे कहा है; सिद्ध भगवान लोक के अग्रभाग मे सिद्ध शिला के ऊपर विराजमान है। यदि हम ससारी पर्याय सहित न होते, तो हम भी सिद्धो के समीप अशरीरी होकर निवास करते।

आगम सच्चे ज्ञान का केन्द्र है। वह जीव को ससारी और मुक्त दो प्रकार का मानता है। निश्चय दृष्टि शुद्ध मुक्त दशा को प्रधान रूप से अपना लक्ष्य बनाती है, व्यवहार दृष्टि ससार की बद्ध दशा का मुख्यता से निरूपण करती है। नियमसार मे कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है—

सव्वे सिद्ध सहावा सुद्धणया ससिदी जीवा ॥ ४८ ॥

शुद्ध नय से सभी ससारी जीव सिद्ध स्वरूप हैं। व्यवहार नय की अपेक्षा जीव शुद्ध तथा अशुद्ध दो प्रकार के माने गए हैं। एकान्त पक्ष सत्य शासन के विपरीत होता है, और स्याद्वाद विरोधी है।

यह एक दृष्टि है। दूसरी दृष्टि और है, कि ससारी जीव शरीर युक्त है, मुक्त जीव शरीर रहित है। पचास्तिकाय मे कुन्दकुन्द स्वामी यह भी कहते हैं—

जीवा ससारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा ॥
उवओगसक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा १०९ ॥

जीव दो प्रकार के है, एक ससारी, दूसरा सिद्ध। दोनो चैतन्य रूप है। उपयोग अर्थात् ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग सहित है। देह सहित ससारी है। देह रहित सिद्ध है।

टीकाकार अमृतचद्र सूरि ने लिखा है—

जीवाः हि द्विविधाः ससारस्था अशुद्धा, निर्वृत्ताः शुद्धाश्च"।

कानजी पथी कथन अनेकात दृष्टि का प्रतिनिधित्व नही करने मे सत्यशासन के विपरीत हो जाता है। वह स्याद्वाद विरोधी है। समन्वय दृष्टि से पूर्ण सत्य का परिज्ञान होता है। बुद्ध ने वस्तु को अनित्य माना है, यह सत्याश है। वह वस्तु के नित्य पक्ष को अस्वीकार करता है, इससे वह सत्य कथन भी असत्य हो जाता है। इसी प्रकार कानजी पथ मे व्यवहार को सर्वथा मिथ्या मानकर निश्चय पक्ष को ही मान्यता दी जाती है, इससे वह कथन स्याद्वाद विद्या के प्रकाश मे असत्य हो जाता है।

मनुष्य के दो नेत्र होते है। सीधी आँख फूटी हो तो वह काना है, बाई आँख फूटी हो तो वह भी काना होगा। जो नय व्यवहार पक्ष को ही सत्य मानकर निश्चय पक्ष को अस्वीकार करेगा, वह मिथ्यात्वी है, इसी प्रकार जो निश्चय को सत्य मानकर व्यवहारनय को मिथ्या मानेगा, वह भी मिथ्यात्वी है।

एकात निश्चय को पकडकर हम मोक्ष से दूर हो जावेंगे। कुदकुद स्वामी की यह बात ध्यान देने योग्य है कि निश्चयनय भगवान को सर्वज्ञ नही मानता और यदि व्यवहारनय का कथन मिथ्या है, तो सर्वज्ञ का लोप हो जायगा तथा सम्पूर्ण जिनागम आप्त वाणी नही रहेगा।

जाणदि पस्सदि सव्व ववहारणयेण केवली भयव ।
केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाण ।।१६०।। नियमसार।

केवली भगवान व्यवहारनय से सर्व पदार्थों को जानते हैं, देखते हैं, किन्तु निश्चयनय से केवली भगवान अपनी आत्मा को देखते ह, जानते ह। इस प्रकार निश्चयनय सर्वज्ञता को अस्वीकार करता है।

स्याद्वाद दृष्टि से दोनो कथन सत्य हैं। केवली भगवान सर्वज्ञ है, आत्मज्ञ भी है। एकातवादी के द्वारा समस्या उलझ जाती है।

**विशेप वात**—यह वात ध्यान देने योग्य है। नियमसार मे कहा हे निश्चय दृष्टि से पुद्गल का परमाणु शुद्ध द्रव्य है। उस दृष्टि मे स्कध का कोई स्थान नही है। व्यवहार की दृष्टि से स्कध का सद्भाव माना गया है। यदि व्यवहार दृष्टि को अप्रमाण तथा झूठा माना जाय, तो शून्यवाद आ जायगा, कारण निश्चय दृष्टि से स्कध का अभाव हे और स्कध का अभाव मानने पर उसके कारण रूप परमाणु का भी अभाव हो जायेगा, अत सर्व झझटो से वचने के लिये दोनो नयो की वास्तविकता स्वीकार करनी चाहिये।

**शका**—कुछ भी कहो हमे तो निश्चय कथनी मे मजा आता है, व्यवहारनय की वात हमे नही रुचती। निश्चयनय का पक्ष लेने से हमारी आत्मा का उत्थान होगा।

**समाधान**—यह वहुत वडा भ्रम है। किसी भी दृष्टि के एकाँत पक्ष से मोक्ष तो कदापि नही मिलेगा, यह सत्य है। पचास्तिकाय की अतिम गाथा १७२ की टीका मे अमृतचद्र सूरि ने कहा है, केवल व्यवहारदृष्टि वाला सत्कार्यों के करने के कारण दुर्गति से वचकर उच्चगति मे जाकर सुखी रहेगा। निश्चयपक्ष का एकातवादी अपने को पूर्ण शुद्ध समझ वैठे है। त्याग, सयम सदाचार का उनकी दृष्टि मे कोई मूल्य नहीं होने से वे प्रमाद की कादम्बरी (मदिरा) पान के फलस्वरूप "केवलपापमेव वध्नाति"—केवल पाप का ही वध करते हैं, इससे वे कुगति मे जाकर दु ख भोगते हैं।

सदाचार की वडी महत्ता है। यदि सम्यक्त्व रहित जीव भी हीनाचार का त्याग करता ह, तो सदाचार के प्रभाव से वह नरक, पशु पर्याय मे नहीं जाता हे। अकेला सम्यक्त्व मोक्ष नहीं देता है।

प्रवचनसार मे कुदकुद स्वामी ने कहा है—

सद्दहमाणो अत्थे असजदो वा ण णिव्वादि ॥२३७॥

तत्व श्रद्धान हो जाने पर भी असयमी व्यक्ति मोक्ष नही पाता ।

चारित्र का चमत्कार—कानजी पथी मडली को यह बात नही भूलना चाहिये, कि सम्यक्त्व से अकेला काम नही बनेगा । भरतेश्वर ने अतर्मुहूर्त मे केवलज्ञान प्राप्त किया था, यह सम्यक्चारित्र का चमत्कार था । वे क्षायिक सम्यक्त्वी होने से गृहस्थावस्था मे भी ज्ञानी थे, किन्तु उनके केवलज्ञान नही हुआ । जब परिग्रह त्याग करके उन्होने शुक्ल ध्यान रूप चारित्र का आश्रय लिया, तब कैवल्य का प्रकाश उन्हे प्राप्त हो गया । अन्तर्मुहूर्त मे कैवल्य प्रदान कराने की क्षमता सम्यक्चारित्र मे ही है । कहा भी है—

अनतसुख सम्पन्न येनात्मा क्षणादपि
नमस्तस्मै पवित्राय चारित्राय पुन. पुन. ॥

यह आत्मा क्षण मात्र मे जिसके कारण अनत सुख को प्राप्त होता है, उस पवित्र चारित्र (यथाख्यात चारित्र) को बारम्बार नमस्कार है ।

शका—आश्चर्य है आत्मार्थी सत्पुरुष पूज्य कानजी महाराज को स्वामी कहे जाने पर आप लोग ऐतराज करते है ? ऐसे ही हम लोगो को मुमुक्षु कहे जाने पर आप लोग आक्षेप क्यो करते है ?

समाधान—'स्वामी' शब्द मालिक का पर्यायवाची है । दिगम्बर जैन धर्म मे परिग्रह त्यागी इद्रियो को वश करने वाले मुनि को स्वामी कहा जाता है । स्वामी इद्रियो का दास (Slave) नही होता है । जिसे इद्रियो ने अपना गुलाम बना लिया है, उसे स्वामी कहना ऐसी ही बात है, जैसे दरिद्र व्यक्ति के पुत्र का नाम करोडीमल रखना अथवा सूरदास को नैनसुख नाम प्रदान करना । जब कानजी स्वय अपने को अव्रती, असयमी कहते हैं, तब इद्रियो के सेवक उनको स्वामी अर्थात् इद्रियो का विजेता कहना उचित नही है। वैसे आपको अधिकार है, आप एक टूटी झोपडी को शौक से राजमहल कहे ।

मुमुक्षु का रहस्य—'मुमुक्षु' शब्द का प्रयोग समतभद्र स्वामी ने ऋषभनाथ भगवान के स्तवन मे किया है, जब उन्होने नीलाजना के नृत्य

को देखकर विषयो मे विरक्त हो, राज्य का परित्याग किया था। आशाधरजी ने सागार धर्मामृत मे उस गृहस्थ के लिये भी मुमुक्षु शब्द का उपयोग किया है, जो हृदय मे मुनि बनने की सच्ची कामना करता है। "देशविरति खलु सर्व विरति लालसा"। जहाँ जीवन सयम की सुवास से सम्पन्न न हो तथा विषय भोगो मे छूटने के बदले मे उसके जाल मे फँसने का ही निरन्तर काम चले वहाँ मुमुक्षु शब्द का उपयोग अद्भुत लगता है। यह हिंसक को दयासागर कहने सदृश वचन है।

मुमुक्षु शब्द के चार भेद हो सकते है। नाम, स्थापना, द्रव्य तथा भाव रूप मे चतुर्विध मुमुक्षु है। व्रत नियम शून्य तथा सदाचार विरोधी व्यक्ति यदि अपने को मुमुक्षु कहते है, तो वे नाममात्र के मुमुक्षु है। किसी वस्तु मे मुमुक्षु की स्थापना करना स्थापना मुमुक्षु है। जो व्यक्ति परिग्रह पिशाच के चक्कर से छूटकर जीवन मे साधुत्व की भावना करते है, वे द्रव्य मुमुक्षु हैं। परिग्रह त्यागकर आत्म प्रकाश से जिनकी आत्मा अलकृत है, वे भाव मुमुक्षु हैं।

एक कमजोर आदमी है, जो विना सहारे के खडा तक नही हो सकता, उसे पहलवान कहने सदृश सयम से डरने वालो तथा सयमी से भयखाने वालो को मुमुक्षु कहना है। शब्द का गलत प्रयोग देखकर ऐतराज करना न्यायोचित बात है। इसमे विद्वेष नही है। इसके भीतर पवित्र सत्य विद्यमान है।

**शका**—हमारे बारे मे यह कहा जाता है, कि हम लोग मुनि को नही मानते। हम मुमुक्षु णमोकार मत्र पढते समय **"णमो लोए सव्व साहूण"** पाठ पढकर सभी सच्चे भावलिगी मुनीश्वरो को प्रणाम करते है। वर्तमान मुनि द्रव्य लिंगी है, अत. हम उनको आराध्य नही मानते, कारण हमारे परम पूज्य कुदकुद भगवान ने 'दसण पाहुड' मे कहा है **"दसणहीणो ण वदिव्वो** (२। सम्यग्दर्शन हीन व्यक्ति को नमस्कार नहीं करना चाहिये।

**समाधान**—अतरग भावो का परिज्ञान केवली भगवान को होता है तथा मन पर्यय ज्ञानी महर्षि मनोगत बात को जानते है। गृहस्थ के श्रुतज्ञान मे दूसरे के सम्यक्त्व है या नहीं, इसको जानने की क्षमता नहीं है। मुनिजीवन के आधारभूत महाव्रत, दिगम्बर मुद्रा आदि को देखकर मुनिराज को प्रणाम करने का आगम मे कथन है। जिनेश्वरी मुद्रा धारण करने वाले,

नकली मुनि वनने वाले देव मे सम्यक्त्वी उद्दायन ने घृणा नही की तथा उनको सच्चा साधु मान परिचर्या की। इससे सम्यक्त्व के निर्विचिकित्सा अग पालने वालो मे राजा उद्दायन का उदाहरण दिया जाता है।

आदिनाथ भगवान पूर्व भव मे वज्रजघ राजा थे। उनके सम्यक्त्व नही उत्पन्न हुआ था। उन्होने अपनी श्रीमती रानी (जो आगे भव मे महादानी राजा श्रेयास हुई) के साथ चारण ऋद्धिधारी भावलिगी मुनि युगल को आहार दिया था, जिससे पचाश्चर्य हुये थे।

उद्दायन राजा के कथानक मे दाता सम्यक्त्वी था, पात्र सम्यक्त्वी नही था। मुनि मुद्रा का सम्यक्त्वी राजा ने सम्मान किया। इस प्रकार आज भी अपने को सम्यक्त्वी मानने वाला यदि जिन मुद्राधारी साधु को आहार देता है तो उसके सम्यक्त्वीपने पर सकट का पहाड नही टूटेगा।

वज्रजघ राजा का कथानक यह वताता है, कि भावलिगी ऋद्धि-मुनि युगल ने द्रव्यलिगी गृहस्थ के द्वारा प्रदत्त आहार लिया था। राजा वज्रजघ के सम्य क्त्व नही था, ऐसा महापुराण मे कहा है। श्रावक का आचार व्यवहार धर्मानुसार होना चाहिये। उसके अन्तरग भाव के आधार पर लोक व्यवस्था नही वनती। उपशम तथा क्षयोपशम सम्यक्त्व असख्यात वार उत्पन्न होते है, ऐसा आगम है। इस काल मे क्षायिक सम्यग्दर्शन नही होता है। इस कारण दातार या पात्र के भावो मे अनेक वार सम्यक्त्व का आना तथा जाना सम्भव है, इस वात को भगवान सीमधर स्वामी सदृश महाज्ञानी जान सकते है। भरत क्षेत्र मे उत्पन्न इस काल का व्यक्ति नही जान सकता। ऐसी स्थिति मे आहार दान का क्या हाल होगा ? दातार का सम्यक्त्व अतरग से चला गया, तो मुनि आहार लेना छोड देगे या पात्र का सम्यक्त्व से चला गया तो दातार आहार देना वन्द कर देगा ? ऐसी व्यर्थ की झझटो मे स्वय को डालना आत्म कल्याण करने वाले विवेकी को उचित नही है।

चौथे काल की वात है। वारिषेण मुनि ने द्रव्यलिगी मुनि पुष्पडाल को अपने साथ रखकर वडी कुशलतापूर्वक उनको सच्चा मुनि वनाया था। इस कारण स्थितिकरण नामक सम्यक्त्व के अग मे वारिषेण मुनि मान्य कहे गए है। द्रव्यलिगी पुष्पडाल मुनि को धार्मिक जन आहार देते थे।

सुन्दर मार्ग-दर्शन—भावलिंगी, द्रव्यलिंगी की जटिल समस्या का सुन्दर समाधान आशाधर जी ने सागारधर्मामृत मे इस प्रकार किया है— पाषाणादि की प्रतिमाओ मे जिनाकार होने से स्थापना निक्षेप द्वारा उन्हे जैसा पूजा जाता है तथा पूजक स्वहित सम्पादन करता है, उसी प्रकार वर्तमान मे दिगम्बर मुनि मुद्राधारी साधु मे पूर्वकालीन मुनियो की स्थापना कर इनको माध्यम बना पूर्व कालीन मुनियो की स्थापना कर आराधना करनी चाहिये। सागार- धर्मामृत के शब्द इस प्रकार है—

विन्यस्यैद युगीनेषु प्रतिमासु जिनानिव।
भक्त्या पूर्व मुनीनर्चेत् कुत श्रेयोति चर्चिनाम् ॥

कुदकुद स्वामी ने दर्शन पाहुड मे मार्मिक बात कही है—जो सह-जोत्पन्न अर्थात् दिगम्बर रूप को देखकर ईर्ष्यावश आदर नही करता, वह सयमयुक्त होता हुआ भी मिथ्यात्वी है। वह उपयोगी गाथा इस प्रकार है—

सहजुप्पण्ण रूव दट्ठु जो मण्णए ण मच्छरियो।
सो सजमपडिवण्णो मिच्छा इट्ठी हवइ एसो ॥२४॥

आगम कहता है पचमकाल के अन्त तक अर्थात् आज से १८५०० वर्ष बाद तक भी दिगम्बर मुद्राधारी मुनि होगे। वे अन्तिम मुनि समाधि सहित मरण करेगे। उनको अवधि ज्ञान प्राप्त होगा, ऐसा त्रिलोकसार तथा तिलोय पण्णत्ति मे कहा है।

स्मरणीय—हमारे आत्मार्थी मुमुक्षु भाइयो को कुदकुद महर्षि के इन वचनो को विचारपूर्वक ध्यान से पढना चाहिये, "असजद ण वदे" (२६)—असयमी की वदना न करे। कानजी बाबा स्वय को असयमी कहते है। वे अपने जीवन मे सयम को आने भी नही देते। उनकी वदना रूप कार्य सम्यक्त्व का पोषक है या विघातक है? यह बात कानजी पथी प्रवक्ताओ तथा भक्तो को न्याय बुद्धि से सोचना चाहिये।

कुदकुद स्वामी असयमी को वदना का अपात्र कहते है, और हमारे सोनगढ पथी उनको गुरु नही, 'सद्गुरुदेव", "जैनधर्म के प्रवर्तक" कहते है। कुछ भक्त जन उन कानजी बाबा के चरणों की छाप कपडे मे लगवाकर उसको

शरीर की चिन्ता करते हुए इन्द्रियों और विषयों की गुलामी द्वारा मोक्ष रूपी आत्मस्वातन्त्र्य को पाने का स्वप्न देखता है। उसे जगाते हुए कुन्दकुन्द स्वामी ने मोक्ष पाहुड मे कहा है—

णिग्गथ मोहमुक्का बावीस परीसहा जियकसाया।
पावारभविमुक्का ते गहिया मोक्खमग्गमि ॥८०॥

जो परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ हैं, बाह्य जगत के प्रति मोहमुक्त हैं, शीत, उष्णादि कठोर बाईस परीषह सहनकर तप द्वारा कर्मों की निर्जरा करते हैं तथा हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन एवं परिग्रहरूप पाप के कारणों का त्याग करते हैं अर्थात् जिनके जीवन मे सत्य, अहिंसा, अचौर्य ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह की समाराधना प्रतिष्ठित है, वे मोक्षमार्ग मे सलग्न माने गये हैं।

आचार्य श्री यह भी कहते हैं, देव तथा गुरु की भक्ति युक्त आत्म-ध्यानी सच्चरित्र व्यक्ति मोक्षमार्ग मे प्रवृत्त है। एकातवादी पूजा आदि को रागभाव कहकर निदनीय कहा करते हैं। सर्वज्ञ परम्परा से प्राप्त मोक्ष पाहुड के इस कथन पर श्रद्धा न करने वाला व्यक्ति मोक्षमार्गी होता है—

देवगुरुण भत्ता णिव्वेय परपरा विचिंतिता।
झाणरया सुचरित्ता ते गहिया मोक्ख मग्गमि ॥८२॥

जो वीतराग अरहंत भगवान, दिगम्बर गुरु के भक्त हैं ससार शरीर तथा भोगो से विरक्त है, ध्यान करने मे निरन्तर प्रयत्नशील रहते है और जिनका आचरण निर्मल है, वे मोक्षमार्ग मे स्थित है।

**प्रमादी की दृष्टि**—लोक मे ऐसे लोग मिला करते है, जो दूसरे का द्रव्य देने की बात भी नही सुनते, किन्तु अपनी रकम वसूल करने मे जघन्य उपायो का भी उपयोग करते हैं, इसी प्रकार की परम्परा एकातवादी वर्ग मे देखी जाती है। साधु के जीवन मे क्या त्रुटि है इसे ही वे ढूढकर तथा उसे बडा रूप देकर दुनियाँ मे ढोल पीटते हैं और स्वय के पतित जीवन के बारे मे कहते है कि सयम पर्याय हम मे अपने आप आ जायेगी, पुरुषार्थ की जरूरत नही है। 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे।' ये लोग लेन-देन, व्यापार, विषयसेवन मे बुद्धिपूर्वक प्रयत्न करते ह तथा वहां भगवान के ज्ञान का बहाना नही बनाते। उन्हे अपने मन मे यह सोचना उचित होगा—

क्या क्या देखी वीतराग ने तू क्या जाने वीरा रे।
वीतराग की वाणी द्वारा, दूर करो भव पीरा रे॥

अध्यात्म वाणी का अभिप्राय था, कि जीव रक्षा करो, इसीलिये तो मुनिराज पिच्छी रखते है नही तो क्या वह शोभा के लिये है ? भावो मे भी प्रमादपने को न आने दो, क्योकि मलिन विचारो के द्वारा जीव कर्मों के बन्धन मे बद्ध होता है। उसका रहस्य न समझकर अध्यात्मवादी कहते हैं, शरीर आत्मा से भिन्न है। शरीर घात करने से पाप नहीं होता। उन को समयसार शास्त्र के रचनाकार भाव पाहुड ग्रन्थ मे अपना मतव्य इस प्रकार स्पष्ट करते हुए सचेत करते हैं—

पणिवहेहि महाजस चउरासी-लक्ख-जोणिहि मज्झम्मि।
उप्पज्जत मरतो पत्तोसि णिरतर दुक्ख ॥१३३॥

हे महायशस्वी साधु ! जीव वध महापाप है, उसको करने वाला ८४ लाख योनियो मे जन्म मरण पाता हुआ निरन्तर दु.ख भोगता है।

यहाँ जीव वध को बुरा कहा है।

चेतावनी—जो कानजी पन्थी समुदाय तीस वर्षो से भी अधिक काल अध्यात्म शास्त्र का ही मनन, प्रचार करते हुये कहता है, हमारा मन त्याग की ओर नहीं जाता है, उसको आध्यात्मिक प्रहरी के रूप मे कुदकुद स्वामी भाव पाहुड मे इस प्रकार सचेत करते हैं—

उत्थरइ जा ण जरओ रोयग्गी जा ण डहइ देहउडि।
इन्द्रिय वल ण वियलइ ताव तुम कुणहि अप्पहियं ॥१३०॥

जब तक बुढापे का आक्रमण नहीं होता, रोग-रूपी अग्नि देह-रूपी झोपडी को भस्म नही करती तथा इन्द्रियो की शक्ति क्षय को नहीं प्राप्त होती है, तब तक आत्मा का हित करो। (असमर्थ होने पर क्या करोगे ?)

प्रश्न—इस प्रसग मे यह प्रश्न उठता है। आत्मधर्म हम पढते हैं, आत्मा की ही अपने शिविरो मे, कक्षाओ मे चर्चा करते हैं, तब हमे और क्या धर्म करना चाहिये ?

उत्तर - सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तो मोक्ष रूपी परम विज्ञान मन्दिर की प्रवेशिका शाला सदृश है। आगे विशारद की शिक्षार्थ श्रावक की एका-

दश प्रतिमायें है, तथा अंतिम कक्षा का कोर्स दशधर्मों का पूर्ण पालन है। कुद-कुद स्वामी ने श्रावको की प्रतिमाओं को तथा मुनियों के उत्तम क्षमादि को धर्म संज्ञा प्रदान की है, इससे यह स्पष्ट होता है कि अणुव्रत पालना या महाव्रत पालना धर्म से जीवन को समलंकृत करना है। धर्मानुप्रेक्षा मे कुदकुद स्वामी कहते हैं—

एकारस दसभेयं धम्म सम्मत्त पुव्वयं भणियं ।
सागार-णरगाण उत्तम सुह संपजुत्तेहिं ॥६८॥

उत्तम मोक्ष सुख वाले जिन भगवान ने कहा है, सम्यक्त्व पूर्वक एकादश प्रतिमा रूप श्रावक का धर्म है तथा उत्तम क्षमादि दशविध श्रमण धर्म है । आचार्य देव कहते हैं—

सावय धम्मं चत्ता यदि धम्मे जो हुवट्ट ए जीवो ।
सो ण य वज्जदि मोक्खं इदि चिंतये णिच्चं ॥८१॥

जो जीव श्रावक धम को त्यागकर मुनि के धर्म मे स्थित होता है, वह मोक्ष से वचित नही होता (यति धर्म पालन द्वारा वह मुक्त होता है) इसका सदा धर्म भावना मे चिंतवन करे । यहाँ व्रत आदि को धर्म कहा गया है ।

प्रश्न—एक समय सुन्दर आध्यात्मिक चर्चा चल रही थी, मैंने आचार्य १०८ शातिसागर जी महाराज से पूछा था, "आत्मा की खूब चर्चा करते हुए भी जो व्यक्ति सामान्य श्रावकाचार को प्रतिज्ञा रूप से नहीं पालन करे, उसका भविष्य कैसा है ?"

उत्तर—आचार्य श्री ने श्रेणिक राजा का उल्लेख करते हुये कहा था "क्षायिक सम्यक्त्वी होते हुये भी नरक आयु बाँध लेने के कारण वह आत्मा व्रत न ले सकी, इसी प्रकार सयम विमुख व्यक्तियो का स्वरूप समझना चाहिये ।" इसके अनतर उन्होने कहा था, "जिसकी जैसी होनहार होती है, उसके अनुसार ही उस जीव की बुद्धि हो जाया करती है ।"

प्रमादी एकातवादी को महर्षि कुदकुद चेतावनी देते हुए कहते है—

सामग्गिंदिय रूव आरोग्ग जोवण बलं तेजं ।
सोहग्ग लावण्ण सुर धणुमिव सस्सय ण हवे ॥४॥

सम्पूर्ण इन्द्रियो की परिपूर्णता नीरोगता यौवन, बल, तेज, सौभाग्य तथा लावण्य इन्द्रधनुष के समान देर तक टिकने वाले नही हैं। आचार्य कुन्द-कुन्द ने यह कहा है—

कालाईलद्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि ॥२४॥ ( मोक्षपाहुड )

काल लब्धि आदि के प्राप्त होने पर आत्मा परम आत्मा होता है। चक्रवर्ती भरत के पुत्र होते हुए श्रेष्ठ आध्यात्मिक वातावरण मे रहने वाले मरीचिकुमार को सम्यक्त्व की ज्योति नही मिली। किंचित् न्यून कोडा-कोडी सागर काल बीतने पर सर्व प्रकार की विपरीत सामग्री होते हुए यम सदृश क्रूरसिंह की पर्याय मे चारण मुनि युगल की वाणी सुनकर उसे अधिगमज सम्यक्त्व का लाभ हुआ तथा दशमे भव मे उस जीव ने महावीर भगवान होकर मोक्ष प्राप्त किया। अत यह स्पष्ट है कि अध्यात्मवादी कहने से तथा आत्मा संबधी ग्रथ को सदा साथ मे रखने मात्र से सम्यक्त्व की प्राप्ति काल लब्धि के अभाव मे असम्भव है।

काल लब्धि आदि कब आई, यह पता नही चलता। ऐसी स्थिति मे क्या कर्त्तव्य रह जाता है ? दो रास्ते है, मोक्ष तो मिलता नही। विषय-भोग की गुलामी का पथ पकडा, तो दु खपूर्ण पशु तथा नारकी की पर्याय मिलेगी। यदि सम्यक्त्व रहित होते हुए भी चोरी, व्यभिचार, बेईमानी आदि विश्व विनिन्दित कुकृत्यो को छोडकर सज्जन पुरुषोचित सदाचार का रास्ता लिया तो स्वर्ग मे उत्पत्ति होगी, तथा विदेह जाकर तीर्थंकर के साक्षात् दर्शन, दिव्यध्वनि सुनने का सौभाग्य तथा नन्दीश्वर वदना आदि अनेक सुयोग प्राप्त होगे। चरम शरीरी न होने से मरण तो अवश्य होगा। यदि कुन्द-कुन्द मुनीन्द्र की कथनी के अनुसार पापाचार का त्याग तथा सदाचार का पालन किया, तो विपत्ति से बचा जा सकेगा। यदि इद्रियो की गुलामी और घृणित शरीर की सेवा करते-करते प्राणो का त्याग हुआ, तो कुगति मे पतन को कौन टाल सकता है ? भगवान महावीर का साक्षात् सानिध्य यदि श्रेणिक महाराज के नरक पतन को न रोक सका, तब अन्य लोगो की तो बात ही क्या है ?

शका—समयसार मे कहा है, शास्त्र अचेतन है, वह ज्ञान रूप नही है। 'सत्थ णाण ण हवइ जह्मा सत्थ ण जाणए किंचि' ॥ ३९० गाथा ॥ समयसार गाथा ३७२ मे कहा है, एक द्रव्य अन्य द्रव्यो मे गुणोत्पादक नही

होता है, "अण्णदविएण अण्णदवियस्स ण कीरए गुणुप्पाओ ।" इस कारण कानजी कहते है शास्त्र को परस्त्री तुल्य त्याज्य समझना चाहिए।

समाधान—शास्त्र के पठन, स्वाध्याय तथा उपदेश से जीव सुपथ में लगते है, यह प्रत्यक्ष अनुभव गोचर बात है। कानजी पथ अपने प्रचार के लिए अपने ढग का साहित्य छपाता है, वितरण करता है। यह कार्य स्पष्ट सूचित करता है, कि एक द्रव्य के द्वारा दूसरे का कुछ नही होता, यह कथन एकात रूप नही है। समयसार मे कुन्दकुन्द स्वामी ने एक दृष्टि से कथन किया है, उसके सिवाय उन्होने दूसरी दृष्टि को भी ध्यान मे रखकर रयणसार मे लिखा है—

इदि सज्जण पुज्ज रयणसार गथ णिरालसो णिच्चं ।
जो पढइ सुणइ भावइ पावइ सो सासय ठाण ॥ १६७ ॥

इस प्रकार सत्पुरुषो के द्वारा वदनीय इस रत्नसार ग्रथ को जो आलस्य छोडकर पढता है, सुनता है, भावना करता है, वह अविनाशी पद को पाता है। यही बात भाव पाहुड मे अन्त मे उन्होने लिखी है—

इय भाव पाहुड मिण सव्व बुद्धेहि देसिय सम्म ।
जो पढई सुणइ भावइ पावइ सो अविचलं ठाण ॥ १६३ ॥

मोक्ष पाहुड के अन्त की गाथा भी उपयोगी है —

एव जिणपण्णत्त मोक्खस्सय पाहुड सुभत्तीए ।
जो पढइ सुणइ, भावइ सो पावइ सासय सोक्ख ॥ १०६ ॥

कुदकुद स्वामी स्वय कहते है कि उनके द्वारा रचित उपरोक्त ग्रथ को जो पढता है, सुनता है, तथा भावना करता है, वह मोक्ष प्राप्त करताहै।

अतः जिनवाणी को परस्त्री कहकर हेय मानना, एक द्रव्य से दूसरे का सर्वथा हित अहित नहीं होता, आदि कथन कुन्दकुन्द स्वामी के कथन द्वारा बाधित होता है। विवेकी व्यक्ति एकात पक्ष को नहीं पकडता। एकात पक्ष का आग्रह सम्यक्त्वी नही करता है।

यह बात विचारणीय है कि कुन्दकुन्द स्वामी का सामधर भगवान की दिव्य ध्वनि रूप पुद्गल द्रव्य से स्वहित न होता, तो वे महर्षि विदेह क्यो जाते ? अत कथचित् एक द्रव्य दूसरे का उपकारी होता है, कथचित् नही होता, ऐसा स्याद्वाद पक्ष उचित तथा उपकारी है।

शका—पुण्य के विषय मे यह बात गले नही उतरती, कि वह आत्मा का शत्रु रूप कर्म है, वह मोक्षार्थी के लिए कैसे उपकारी हो सकेगा ?

उत्तर—अनेकात के प्रकाश मे समाधान खोजना चाहिए। पुण्योदय से प्राप्त सामग्री का उपयोग चतुर व्यक्ति स्व परहित के साधनो मे करता है। क्रूर तथा दुष्ट व्यक्ति उस साधन सामग्री का उपयोग विषय कषायो के पोषण मे करता है। इस प्रसग मे यह पद्य उपयोगी है—

विद्या विवादाय धन मदाय शक्ति परेषा परपीडनाय।
खलस्य साधो' विपरीत मेतज्ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥

दुर्जन विद्या का उपयोग विवाद मे, धन का अहकार पोषण मे तथा शक्ति का उपयोग दूसरो को कष्ट प्रदान करने मे करता है, सत्पुरुष विद्या का ज्ञान कार्य मे, धन का पात्र दान में तथा शक्ति का असमर्थो के रक्षण कार्य मे उपयोग करता है।

मिथ्यादृष्टि पुण्योदय से प्राप्त सामग्री को पापानुबन्धी क्रियाओ मे लगाता है। जैसे किसी के बहुत धन सम्पत्ति हो गई, और उसने कसाईखाना खोल दिया, मास विक्रय, मद्य विक्रयादि का बडे रूप मे काम शुरू कर दिया, हीन प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन हेतु सम्पत्ति का उपयोग किया। उसके फलस्वरूप वह अपने सचित पुण्य का क्षयकर पाप के सागर मे डूबता है।

यदि वह धन वैभव आदि सम्यग्दृष्टि विवेकी सत्पुरुष को प्राप्त हुआ, तो वह उसके द्वारा रत्नत्रय के अगरूप कार्यो का सरक्षण, सवर्धन, जीव हितादि का कार्य सम्पन्न करता है। इसमे वह घातिया कर्मरूप पाप का क्षय करता हुआ तथा अन्त मे उस वैभव मात्र का त्यागकर भगवान शातिनाथ के समान स्वदोष शान्ति द्वारा शाश्वतिक शातिपूर्ण पद को पाता है। जिस व्यक्ति के पास धन मादकता पैदा करता है, उस व्यक्ति का हाल निन्दनीय कहा जाता है।

इस कारण पुण्य के विषय मे स्याद्वाद दृष्टि का उपयोग जरूरी है। श्रीषेण राजा ने सत्पात्र दान दिया था, उससे उसके अपार पुण्य वृद्धि होती गई, तथा उसने वैभव का सत्कार्यो मे उपयोग किया। अन्त मे वह आत्मा भगवान शातिनाथ तीर्थंकर होकर मोक्षधाम मे विराजमान हो गई।

मार्मिक विचार—इस प्रसग मे एक बात ईमानदारी से हृदय पर हाथ रखकर विचारने की है। एकातवादी वर्ग अपना सारा दिन "हाय धन, हाय पैसा" से प्रेरित हो पुण्य रूपी वृक्ष के फल को सग्रह करना चाहता है और कहता है, हमे पुण्य नही चाहिए। कोई आम के शौकीन सज्जन आम तो खाना चाहे और आम के वृक्ष से घृणा करे, तो उनकी यह चेष्टा समझदारो को मनोविनोदप्रद है। यदि आम का वृक्ष नही चाहिये, तो उसके फलो का भी त्याग करो, तब विवेक की बात समझी जाये।

तीर्थंकर भगवान दीक्षा लेते समय पुण्योदय से प्राप्त फल रूप सामग्री का जीर्ण तिनके के समान त्याग करते हैं और अतरग बहिरग रूप मे अपरिग्रही बनते हैं, तब वे पाप का क्षय करते हुए पुण्य का भी नाश कर सिद्ध पदवी पाते है। अत विवेक के प्रकाश मे तत्त्व पर दृष्टि डालना समझदारी की बात है।

एकात पक्ष वालो का सच्चा हित स्याद्वाद चक्र का शरण ग्रहण करने मे है। स्याद्वाद का शरण लेने वाला ही मोक्ष पाता है।

बनारसीदासजी ने स्याद्वाद दृष्टि के विषय मे नाटक समयसार मे मार्मिक शब्द लिखे है—

समुझे न ज्ञान कहे करम किए सो मोक्ष।
ऐसे जीव विकल मिथ्यात की गहल मे॥
ज्ञान पक्ष गहे, कहे आतमा अबध सदा मै।
बरते सुछन्द, तेउ डूबे है चहल मे॥ १॥

जथायोग करम करे, पै ममता न धरे।
रहे सावधान, ध्यान की टहल मे॥
तेई भवसागर के ऊपर ह्वै तरै जीव।
जिन्ह को निवास स्याद्वाद के महल मे॥ २॥

समन्वय पथ—आत्महित साधना जिनका ध्येय है, वे शास्त्र का उपयुक्त और उपयोगी अश ग्रहण कर जीवन शोधन के कार्य मे

प्रयत्नरत रहा करते है। समन्वय दृष्टि वाला साधक शास्त्र के अर्थ को उसके प्रसग, प्रकरण आदि को ध्यान मे रखकर वस्तुस्वरूप को मन मे प्रतिष्ठित करता है। अध्यात्म दृष्टि और व्यवहार दृष्टि का समन्वय न होने पर शास्त्र जीवन को उन्नत नही बनाता है। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण यहा दिये जाते हैं।

अध्यात्म दृष्टि की मुख्यता से कहा जाता है, आत्मा अविनाशी है, आत्मा की मृत्यु नहीं होती। पूज्यपाद ऋषिराज ने इष्टोपदेश मे कहा है "न मे मृत्यु कुतो भीति.'। इस दृष्टि वाले सत्पुरुष को यह आर्षवाणी भी स्मरण में रहनी चाहिए "समाहि मरण होउ मज्झ" मेरे समाधिमरण हो। पचमकाल मे चरम शरीरी मानव का जन्म नही होता है। उसकी मृत्यु अवश्य होगी। न मे मृत्यु. का पाठ पढने पढाने वाले महर्षि पूज्यपाद को समाधिमरण पर भी ध्यान देना आवश्यक पडा। उन्होंने भगवान से प्रार्थना की है, "प्राण प्रयाण क्षणे त्वन्नाम-प्रतिबद्ध वर्ण पठने कण्ठस्त्वकुण्ठो मम"—प्राण प्रयाण काल मे जिनेश्वर के नाम स्मरण करते समय मेरा कण्ठ अवरुद्ध न हो। विवेकी साधक समाधिमरण को ध्यान मे रखता है तथा मेरी आत्मा की मृत्यु नही है इस सत्य पर भी अपनी दृष्टि रखता है।

अध्यात्म दृष्टि कहती है आत्मा ही आत्मा का है, "आत्मैव गुरुरात्मन·" समाधि-शतक मे लिखा है —

नयत्यात्मान मात्मैव जन्मनिर्वाण मेव वा।
गुरुरात्मात्मन स्तस्मान्नान्योस्ति परमार्थत ॥ ७५ ॥

आत्मा ही आत्मा को ससार मे तथा निर्वाण मे ले जाता है, इससे परमार्थ से आत्मा का गुरु आत्मा है, अन्य गुरु नही है।

इस दृष्टि के साथ व्यवहार दृष्टि भी साधक को अपनानी चाहिए, ताकि वह उसके जीवन निर्माण करने मे पथ प्रदर्शक आचार्यादि को अपनी श्रद्धा तथा विनय का केन्द्र बनावे। बोध पाहुड मे कुन्दकुन्द स्वामी अपने गुरु द्वादशाग के वेत्ता भद्रबाहु श्रुतकेवली को इस प्रकार स्मरण करते हैं :—

बारस अंग वियाणं चउदस पुव्व-विउल वित्थरण।
सुयणाणि भद्दबाहू गमय-गुरु-भयवओ जयउ ॥ ६२ ॥

द्वादशाग विज्ञान चतुर्दश पूर्वांग विपुल विस्तार ।
श्रुतज्ञानी भद्रबाहु गमकगुरु भगवान् जयतु ।।

चौदह पूर्वांगरूप विपुल विस्तार सहित द्वादशाग के ज्ञानी गमक गुरु श्रुतज्ञानी भगवान भद्रबाहु जयवत हो ।

गुरु के द्वारा जीव का महान हित होता है, यह सत्य कृतज्ञ शिष्य के सदा ध्यान मे रहना चाहिए । यह पद्य प्रसिद्ध है—

अज्ञान-तिमिरान्धाना ज्ञानाजन शलाकया ।
चक्षु रुन्मीलित येन तस्मै श्री गुरवे नम ।।

वे गुरु वदनीय है, जिन्होने ज्ञानाजन युक्त सलाई के द्वारा अज्ञानाध-कार से अधे शिष्यो के नेत्रो को उन्मीलित किया—रोग विमुक्त बनाया । णमोकारमत्र मे आचार्य, उपाध्याय परमेष्ठी को स्मरण करते हुए गुरु की वदना की जाती है । विवेकी व्यक्ति परमार्थ दृष्टि तथा व्यवहार दृष्टि युगल को हित साधक मानता है—

अध्यात्म दृष्टि तीर्थ वदना, देवा राधना, गुरु वदना का निषेध करती हुई, आत्मदेव की आराधना को हितकारी बताती है । परमात्म प्रकाश मे लिखा है—

अण्णु जि तित्थु म जा हि जिय अण्णु जु गुरु उ म सेवि ।
अण्णु जि देउ म चिति तुहु अप्पा विमल मुएवि ।।१–९५।।

हे जीव, अपनी आत्मा को छोडकर किसी अन्य तीर्थ को मत जा, किसी अन्य गुरु की सेवा मत कर तथा किसी अन्य देव की आराधना मतकर ।

इसको पढने वाला एकान्तवादी भोगासक्त व्यक्ति अपने प्रमादी जीवन को पुष्ट करना चाहता है । वह तीर्थ वन्दना, गुरु सेवा तथा मन्दिर जाना, पूजा करना आदि को अनुपयोगी मानता हुआ उपरोक्त शास्त्र की आज्ञा को समक्ष रखता है । वह पूज्यपाद स्वामी के इस कथन को अपने स्वेच्छा चरण का अवलबन बनाता है—

य परात्मा स एवाहं योहं स परमस्तत ।
अहमेव मयो पास्यो नान्य: कश्चिदिति स्थिति ॥३१॥

जो परमात्मा है, वह मै हूँ, जो मै हूँ वह परम आत्मा है, अत मै अपने द्वारा उपास्य हूँ, अन्य कोई आराधना योग्य नही है, ऐसी यथार्थ स्थिति है।

इस अभेद भक्ति रूप श्रेष्ठ स्थिति को श्रेष्ठ दिगम्बर श्रमण ही प्राप्त कर सकते है, उस स्थिति को साध्य बनाने वाला देव पूजा, गुरु भक्ति, तीर्थ यात्रा आदि साधनो का आश्रय ले अपने रागादि विकारो से अत्यन्त मलिन जीवन को स्वच्छ बनाता हुआ मोक्ष पथ मे प्रगति करता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने भाव पाहुड मे कहा है—

जिणवर चरणबु रुह णमति जे परम भत्ति-राएण ।
ते जम्मवेलि मूल खणति वर भाव सत्थेण ॥१५१॥

जिनेश्वर के चरण कमलो को जो उच्च भक्ति युक्त अनुराग भाव से प्रणाम करते हैं वे जन्म रूप वेलि के मूल को निर्मल परिणाम रूप शस्त्र से काट डालते हैं। देव, गुरु, तीर्थ आदि का सम्पर्क पाकर मोही मानव मानसिक मलिनता से छूटता है तथा ऐसे विशिष्ट आनन्द को प्राप्त करता है, जो भोगजन्य सुखो की अपेक्षा अत्यन्त उच्चकोटि का होता है। वीतराग की हृदय से भक्ति जनित आनन्द लोकोत्तर होता है। मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए आत्मा को अपनी शक्ति का अपव्यय रोककर स्वय मे केन्द्रित होना आवश्यक है। इससे परोपकार मे समय व्यतीत करने वाले श्रमण को इष्टोपदेश मे आचार्य कहते है—

परोपकृति मुत्सृज्य स्वोपकार परो भव ।
उपकुर्व न्परस्याज्ञ दृश्यमानस्य लोकवत् ॥ ३३ ॥

आत्मन् ! अन्य का उपकार रूप कार्य त्याग करके आत्मा के उपकार कार्य मे तत्पर हो। आत्मा से भिन्न शरीर आदि दृश्यमान वस्तुओ का हित सपादन कार्य मे अपना काल व्यतीत करते हुए तुम अज्ञानी जगत का अनुकरण करते हो।

# अमृत मंथन

१ यस्य स्वय स्वभावाप्ति रभावे कृत्स्नकर्मण·
तस्मै सज्ञानरुपाय नमोस्तु परमात्मने ।। इप्टोपदेश १

मैं अनन्त ज्ञान स्वरूप परमात्मा को प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने समस्त कर्मों का नाश हो जाने पर स्वय अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त किया है।

२ एहु जु अप्पा सो परमप्पा कम्मविसेसे जायउ जप्पा
जामइ जाणइ अप्पे अप्पा तामइ सो जि देउ परमप्पा ।। २-१७४
परमात्मप्रकाश

यह आत्मा परमात्मा है। वह कर्मोदय के कारण पराधीन हो गया है। जब वह अपने स्वरूप को जान लेता है, तब वह परमात्मा की अवस्था को प्राप्त करता है।

३ देह विभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ।
परमसमाहि-परिट्ठियउ पडिउ सो जि हवेइ ।। १-१४ पर प्रकाश

जो शरीर से भिन्न ज्ञानमय परमात्मा को जानता है, वह परम समाधि में स्थिति होकर पडित ( अन्तरात्मा ) हो जाता है।

४ स्वसवेदन सुव्यक्स्तनुमात्रो निरत्यय ।
अत्यत सौख्यवान् आत्मा लोकालोक विलोकन ।।२१ इष्टोपदेश

यह आत्मा स्वसवेदन ( आत्मा का ज्ञान ) द्वारा पूर्णतया व्यक्त होता है। यह शरीर प्रमाण, विनाशरहित, अनन्त सुख सम्पन्न तथा लोक और अलोक का ज्ञाता है।

५ अहमिक्को खलु सुद्धो दसण-णाण-मइयो सयाऽरुवी ।
ण वि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्ण परमाणुमित्त पि ॥३९समयसार

मैं एक हूँ, मैं शुद्ध हूँ, ज्ञानदर्शन युक्त हूँ, सदा अरूपी हूँ । परमाणु मात्र भी अन्य पदार्थ मेरा नही है ।

६ एक सदा शाश्वतिको ममात्मा । विनिर्मल. साधिगमस्वभाव ।
वहिर्भवा सन्त्यपरे समस्ता न शाश्वता कर्मभवा. स्वकीया ॥
द्वात्रिंशतिका २६

मेरी आत्मा सदा एक है, अविनाशी है, पूर्ण निर्मल और ज्ञान स्वभाव वाली है । वाह्य पदार्थ जो कर्मों के कारण उत्पन्न हुये है, वे सब मेरे नही है । वे अविनाशी भी नही है ।

७ अरस-मरुव-मगध अव्वत्त चेदणागुण-मसद्द ।
जाण अलिंग्गहण जीव मणिद्दिट्ठ सठाण ॥ १२७ पचास्तिकाय

जीव रस, रूप तथा गध रहित है । यह अव्यक्त है । चेतना गुण युक्त है । शब्दरहित है । इसका चिह्नो से ज्ञात नही होता । यह निश्चित आकार रहित है ।

८ णाह देहो ण मणो, न चेव वाणी, ण कारण तेसिं ।
कत्ता ण, कारयिदा, अणुमत्ता णेव कत्तीण ॥ १६०
प्रवचनसार

मैं शरीर नहीं हूँ, मन नही हूँ वचन नही हू । मैं इन तीनो का कारण नही हूँ, कराने वाला नही हूँ और मैं इनका अनुमोदन करने वाला भी नहीं हूँ ।

९ तिक्काले चदु पाणा इदिय-वल-माउ-आणपाणो य ।
ववहारा सो जीवो णिच्चय-णयदो दु चेदणा जस्स ॥ ३
द्रव्यसग्रह

जिसके भूत, भविष्यत और वर्तमान काल मे इद्रिय, वल-आयु तथा स्वास और उच्छ्वास ये चार प्राण होते है, वह व्यवहारनय से जीव है । निश्चयनय से जिसके चेतना पाई जाती है वह जीव है ।

१० अप्पा बंभणु वइसु ण वि ण वि खत्तिउ ण वि सेसु ।
पुरिसु णउंसउ इत्थि ण वि णाणिउ मुणइ असेसु ॥ ८१

परमात्म प्रकाश

आत्मा ब्राह्मण नही है, वैश्य नही है, क्षत्रिय नही है, शूद्र नही है। वह पुरुष नही है, नपुसक नही है और स्त्री नही है। वह सम्पूर्ण वस्तुओ का ज्ञाता है।

११ कालु लहेविणु जोइया जिमु जिमु मोहु गलेइ ।
तिमु तिमु दसणु लहइ जिउ णियमे अप्पु मणेइ ॥ ८५ प. प्र.

हे योगी! काललब्धि को पाकर जैसे-जैसे मोह गलता जाता है उसी प्रकार यह जीव आत्मदर्शन को प्राप्त करता है तथा निश्चय रूप मे आत्मस्वरूप को जानता है।

१२ अप्पा माणुसु देउ ण वि, अप्पा तिरिउ ण होइ ।
अप्पा णारउ कहिं वि ण वि णाणिउ जाणइ जोइ ॥ ९० प. प्र

यह जीव वास्तव मे मनुष्य नही है, देव नही है, पशु नही है तथा नारकी भी नही है। यह आत्मा ज्ञान स्वरूप है। योगी उस आत्मा को जानते है।

१३ रागद्वेषादि कल्लोलै - रलोल यन्मनोजलम् ।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्व तत् तत्त्व नेतरो जन. ॥३५ समाधिशतक

जिस पुरुष का मन रूपी जल राग, द्वेष, मोह आदि की लहरो मे चचल नही है, वह अपनी आत्मा के सच्चे स्वरूप को देख लेता है। अन्य लोग उसका दर्शन नही कर पाते।

१४ सर सलिले थिरभूए दीसइ णिवडिय पि जह रयण ।
मण सलिले थिरभूए दीसइ अप्पा तहा विमले ॥ ४१ तत्त्वसार

जिस प्रकार सरोवर के जल के स्थिर होने पर उसमे गिरा हुआ रत्न दिखाई देता है, उसी प्रकार निर्मल मन रूपी जल के स्थिर होने पर आत्मदर्शन होता है।

१५ जह जह मणसचारो इदिय विसया वि उवसम जति।
तह तह पयडइ अप्पा अप्पाणं जाण हे सूरि ॥ ३० तत्त्वसार

हे सूरि! जैसे-जैसे मन का सचार और इद्रियों की विषयों मे प्रवृत्ति रुकती है, वैसे-वैसे आत्मा अपने आपको प्रकाशित करता है। इस बात को हृदय में धारण करो।

१६ ताम ण णज्जए अप्पा विसएसु णरो पवट्टए जाम।
विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाण ॥ ६६ मोक्ष पाहुड

जब तक यह जीव भोगादि विषयों मे प्रवृत्ति करता है, तब तक वह आत्मा को नहीं जानता है। विषयों से विरक्त योगी आत्मा को जानता है।

१७ सिद्धोऽहसुद्धो ऽ ह अणत-णाणादि-गुणसमिद्धोह।
देहपमाणो णिच्चो असखदेसो अमुत्तो य ॥ २८ तत्त्वसार

मैं सिद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ। मै अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन आदि गुणो से सम्पन्न हूँ। मैं देह प्रमाण, अविनाशी, असख्यात् प्रदेश वाला तथा मूर्ति रहित हूँ।

१८ चित्तविरामे विरमति इंदिया तेसु विरदेसु।
आद सहावम्मि रदी होदि फुडं तस्स णिव्वाण ॥ १० न ना.

मन के स्थिर होने पर इद्रिया विषयों की ओर प्रवृत्ति नहीं करती है। जिसकी आत्म स्वरूप में निमग्नता होती है, उसे मोक्ष प्राप्त होता है।

१९. सयम्य करणग्राम मेकाग्रत्वेन चेतन।
आत्मान मात्मवान् ध्यायेत् आत्मनैव आत्मनि स्थित ॥ २२
इष्टोपदेश

आत्मा, स्पर्शन आदि इन्द्रियों को विषयों से रोककर, मन की एकाग्रता से आत्मा के स्वरूप में स्थिर होकर अपनी आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा का, ध्यान करे।

२० प्रमेयत्वादि भिर्धर्मै-रचिदात्मा चिदात्मकः ।
ज्ञान दर्शनस्तस्मात् चेतनाऽचेतनात्मकः ॥ स्वरूप सबोधन ३

यह आत्मा प्रमेयत्व, वस्तुत्व आदि गुणों की अपेक्षा अचित् रूप ( अचेतन ) है। ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा चेतनात्मक है। इस कारण यह चेतन और अचेतन दोनो रूप है ( यहा अचेतन का अर्थ जड नही है। चैतन्य भिन्न अन्य गुण रूप है )

२१. सोहमित्यात्त-सस्कार', तस्मिन्भावनया पुन' ।
तत्रैव दृढसस्कारात् लभते ह्यात्मनि स्थितिम् ॥ २८
समाधिशतक

योगी अन्तरात्मा वनने पर परमात्मा मे सोऽह—वह परमात्मा मैं हूं इस प्रकार की भावना के द्वारा अपना सस्कार वनाता है और परमात्मा मे दृढ सस्कार द्वारा अपनी आत्मा मे स्थिरता प्राप्त करता है।

२२ शरीरत. कर्तुमनतशक्ति विभिन्न-मात्मान-मपास्तदोपम् ।
जिनेन्द्रकोपादिव खड्गयष्टि तव प्रसादेन ममास्तु शक्ति. ॥
सामायिक पाठ

हे जिनेन्द्र ! आपके प्रसाद से मुझे ऐसी शक्ति प्राप्त हो, कि जिस प्रकार तलवार म्यान से भिन्न रहती है, इस प्रकार मैं दोप रहित, अनन्त शक्तियुक्त अपनी आत्मा को शरीर से पृथक कर सकूं।

२३ न मे मृत्यु कुतो भीतिर्न मे व्याधि' कुतो व्यथा ।
नाह वालो न वृद्धोह न युवेतानि पुद्गले ॥ २९ इष्टोपदेश

मेरी आत्मा की मृत्यु नही होती, इसलिये मैं क्यो भय धारण करू ? मेरी आत्मा के कोई रोग नही है इसलिये मै क्यो पीडा का अनुभव करू ? मै वालक नही हूँ, मै वृद्ध नही हूँ, मै युवक नही हूँ। ये अवस्थाएँ पुद्गल मे पाई जाती है।

२४ अहमेको न मे कश्चित् नैवाहमपि कस्यचित् ।
इत्यदीनमना' सम्यगेकत्वमपि भावयेत् ॥ ३८-१८४ महापुराण

इस ससार मे मैं अकेला हूं, मेरा कोई नही है तथा मैं भी किसी का नही हूं। इस प्रकार धैर्य धारण कर भली प्रकार आत्मा के एकत्वपने की भावना करे।

२५ अकिंचनोह - मित्यास्व त्रैलोक्याधिपति र्भवे ।
योगिगम्य तव प्रोक्त रहस्य परमात्मन. ॥ ११० आत्मानुशासन

हे भद्र ! मैं अकिंचन रूप हूं—कोई भी पदार्थ मेरा नही है। इस प्रकार की भावना कर, इससे तू त्रिलोक का स्वामी हो जायगा। मैंने तुझे योगिगम्य परमात्मपद का रहस्य कहा है।

२६ जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाण मप्पणा अप्पा ।
ण वि कम्म णोकम्म चेदा चिंतेदि एयत्त ॥ १८८ समयसार

जो आत्मा सर्वपरिग्रह का त्याग करके आत्मा मेरी है इस प्रकार आत्मा का ध्यान करता है तथा कर्म और नो कर्म मेरे नहीं हैं, ऐसा मानता है, वह आत्मा के एकत्व का चिन्तवन करता है।

२७ देहह पेक्खवि जरमरणु मा भय जीवकरेहि ।
जो अजरामरु बभ परु सो अप्पाणु मुणेहि । ७१परमात्मप्रकाश

हे जीव ! शरीर की वृद्धावस्था और मृत्यु को देखकर तू भयभीत मत हो। जो परब्रह्म अजर और अमर है, उस रूप अपनी आत्मा को जान।

२८. न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत् क्षेमकर मात्मन ।
तथापि रमते वाल स्तत्रैवाज्ञान भावनात् ॥ ५५ समाधिशतक

जो आत्मा का कल्याणकारी तत्त्व है, वह इंद्रियों के विषय-भोगों मे नहीं है। फिर भी अज्ञानी जीव अज्ञान भावना से उन इंद्रियों के विषयों मे प्रेम करता है।

२९ त्वमेव कर्मणा कर्ता भोक्ता च फलसतते ।
मोक्ता च तात किं मुक्तौ स्वाधीनायां न चेष्टसे ॥ ११-८५
क्षत्रचूडामणि

हे आत्मन् ! तू ही कर्मों का कर्ता है और फलों का भोगने वाला है। तू ही मोक्ष प्राप्त करने वाला है। हे तात ! अपने वाञ्छित मोक्ष के लिय क्यो नहीं प्रयत्न करता है ?

३० वधाण च सहाव वियाणिओ अप्पणो सहाव च ।
वधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खण कुणई ॥२९३समयसार

जो वन्ध के स्वरूप को और आत्मा के स्वरूप को जानकर वन्ध के कारणो से विरक्त होता है, वह आत्मा कर्मो का पूर्ण रीति से क्षय करता है।

३१ जह वधे चिततो वधण-वद्धो ण पावइ विमोक्ख ।
तह वधे चिततो जीवोवि ण पावइ विमोक्ख ॥२९१ समयसार

जैसे वन्धन मे वन्धा हुआ पुरुष अपने वन्धनो के विषय मे केवल विचार करता हुआ मोक्ष नहीं पाता, उसी प्रकार यह जीव भी वन्ध का चितवन करता हुआ मोक्ष नहीं पाता है।

३२ जह वधे छित्तूणय वधण-वद्धो उ पावइ विमोक्ख ।
तह वधे छित्तूण य जीवो सपावइ विमोक्खं ॥ २९२ समयसार

जैसे वन्धन मे वन्धा पुरुष वन्धनो को काटकर स्वतन्त्र होता है, उसी प्रकार यह जीव भी कर्म वन्धन को नष्ट कर मोक्ष को पाता है।

३३ वध्यते मुच्यते जीवः सममो निर्ममः क्रमात् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्व विचितयेत् ॥ २६ इष्टोपदेश

जो जीव ममता भाव युक्त है, वह कर्मों के वन्धन को प्राप्त करता है तथा जिसके ममकार भाव नष्ट हो गया है वह मोक्ष को प्राप्त करता है। इसलिये पूर्ण प्रयत्न करते निर्ममत्व रूप से आत्मा का चितवन करे।

३४ भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु वधगो भणिदो ।
रागादि विप्पमुक्को अवधगो जाणगो णवरि ॥ २६७ समयसार

जीव के द्वारा किये गये राग आदि परिणाम उस जीव के वन्ध के कारण हैं। जो आत्मा रागादि से रहित है और वन्ध रहित है वह ज्ञायक रूप है।

३५ तत्र वधः स्वहेतुभ्यो य सश्लेपः परस्परं ।
जीव कर्मप्रदेशाना स प्रसिद्ध श्चतुर्विध. ।। ६ तत्त्वानुशासन

अपने कारणो से जीव और कर्म के प्रदेशो का परस्पर मे मिल जाना बन्ध है। वह बन्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप से चार प्रकार का है।

३६ बंधस्य हेतव पच स्युर्मिथ्यात्व मसंयम ।
प्रमादश्च कपायश्च योगश्चेति जिनोदिता. ।। ५-२ तत्त्वार्थसार

जिनेन्द्र भगवान ने मिथ्यात्व, असयम, प्रमाद, कपाय तथा योग ये पाँच वन्ध के कारण कहे हैं।

३७ अनादि नित्य सबधात् सह कर्मभिरात्मन' ।
अमूर्तस्यापि सत्यैक्ये मूर्तत्वमवसीयते ।। ५-१७ तत्त्वार्थसार

अनादिकाल से मूर्ति रहित आत्मा का कर्मों के साथ निरन्तर सम्बन्ध होने पर एक रूपता होने के कारण आत्मा को मूर्ति युक्त भी माना गया है।

३८ तथा च मूर्तिमानात्मा सुराभिभवदर्शनात् ।
न हि अमूर्तस्य नभसो मदिरा मदकारिणी ।।५-१९ तत्त्वार्थसार

आत्मा मूर्तिमान है, क्योकि मूर्तिमान मदिरा के द्वारा आत्मा प्रभावित होती हुई देखी जाती है। मदिरा के द्वारा मूर्ति रहित आकाश मे उन्मत्तता का दर्शन नहीं होता।

३९ वध हेतुपु सर्वेपु मोहश्चक्री प्रकीर्तितः ।
मिथ्याज्ञान तु तस्यैव सचिवत्व मशिश्रियत् ।। १२ तत्त्वानुशासन

वन्ध के कारणों मे मोहनीय कर्म चक्रवर्ती राजा सदृश है। मिथ्याज्ञान उसके मन्त्री के समान सहायक है।

४०. ममाहंकार नामानौ सेनान्यौ तत्सुतौ ।
यदायत्तः सुदुर्भेदो मोहव्यूहः प्रवर्तते ॥ १३ तत्त्वानुशासन

उस मोह के अहंकार और ममकार नाम के दो पुत्र सेनापति हैं, इन दोनों के अधीन दुर्भेद्य मोह की सेना का व्यूह प्रवृत्ति करता है।

४१ तस्मादेतस्य मोहस्य मिथ्याज्ञानस्य च द्विषः ।
ममाहंकारयो श्चात्मन् विनाशाय कुरूद्यमम् ॥ २० त मा.

इसलिये हे आत्मने ! आत्मा के शत्रु मोह, मिथ्याज्ञान तथा ममकार और अहकार के विनाश के लिये तू उद्योग कर ।

४२ स्व स्वत्वेन ततः पश्यन् परत्वेन च तत्परम् ।
परत्यागे मतिं कुर्या. कार्यैरन्यै किमस्थिरैः ॥७-१८क्षत्रचूडामणि

आत्मन् ! अपनी आत्मा को अपने रूप से तथा उससे भिन्न शरीर को अपने से भिन्न रूप मे देखते हुए पर वस्तु के त्याग मे अपनी बुद्धि को लगा । अन्य नष्ट होने वाले कार्यों से क्या लाभ है ?

४३ परत्यागकृतो ज्ञेया सानगाराऽगारिण ।
गात्रमात्रधना पूर्वे सर्वसावद्य वर्जिता ॥ १९

पर वस्तु को त्याग करने वाले अनगार ( मुनि ) तथा गृहस्थ जानने चाहिए । इनमे मुनिराज सम्पूर्ण पापो के त्याग करने वाले केवल शरीर मात्र सम्पत्ति के स्वामी होते हैं ।

४४ सम्यक्त्वममल-ममला-न्यणुगुण-शिक्षाव्रतानि मरणान्ते ।
सल्लेखना च विधिना पूर्ण सागारधर्मोयम् ॥ १-१२
सागारधर्मामृत

निर्मल सम्यग्दर्शन, निर्दोप रूप से अणुव्रत, गुणव्रत तथा शिक्षाव्रत रूप श्रावको के द्वादश व्रतो का परिपालन तथा विधिपूर्वक मरणान्त समय मे समाधि का होना यह परिपूर्ण गृहस्थ-धर्म है ।

४५ जीवादी सद्दहण सम्मत्त जिणवरेहिं पण्णत्त ।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाण हवइ सम्मत्तं ॥ २० दर्शनपाहुड

जिनेन्द्र भगवान ने व्यवहारनय से जीवादि का श्रद्धान करना सम्यक्त्व कहा है । निश्चयनय की अपेक्षा आत्मा का श्रद्धान सम्यक्त्व कहा है ।

४६ हिंसा रहिए धम्मे अट्ठारह दोस वज्जिए देवे ।
णिग्गथे पव्वयणे सद्दहण होइ सम्मत्त ॥ ९७ मोक्षपाहुड

हिन्सा रहित अर्थात् अहिंसा धर्म, अठारह दोष रहित देव और निर्ग्रन्थ गुरू की वाणी में श्रद्धा करना सम्यक्त्व है ।

४७ सम्यक्त्वा त्सुगति प्रोक्ताज्ञानात्कीर्ति रुदाहृता ।
वृत्तात्पूजा मवाप्नोति त्रयाच्च लभते शिवम् ॥ यशस्तिलक

सम्यक्त्व से सुगति मिलती है । ज्ञान से यश मिलता है । चारित्र से आदर प्राप्त होता है । तीनों के सम्मिलन द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

४८ अहिंसा सत्य मस्तेय स्वस्त्री मितवसु ग्रहौ ।
मद्य मास मधुत्यागै स्तेपा मूलगुणाष्टकम् ॥ ७-२३
क्षत्र चूडामणि

गृहस्थों के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वस्त्री सन्तोष और सीमित पदार्थों का संग्रह तथा शराब, मास और शहद का त्याग ये आठ मूल गुण कहलाते हैं ।

४९ मद्य पल मधु निशाशन पचफली विरति पचकाप्त-नुती ।
जीवदया जलगालन मिति च क्वचिदष्ट मूल गुणा ॥
सागार धर्मामृत

मद्य, मास, शहद, रात्रि भोजन, पीपल, वड, ऊमर, कठ ऊमर और पाकर रूप पच जीव युक्त फलों का त्याग, पच परमेष्ठि की पूजा, जीवदया तथा जलगालन को किन्ही आचार्यों ने गृहस्थ के आठ मूल गुण कहे हैं ।

५० हिसानृत चौर्येभ्यो मैथुनसेवा परिग्रहाभ्याच ।
पाप प्रणालिकाभ्यो विरति. सज्ञस्य चारित्रम् ॥४९॥
रत्नकरण्डश्रावकाचार

हिसा,झूठ,चोरी,पर स्त्री सेवन तथा परिग्रह रूप पाप के कारणो का परित्याग करना सम्यग्ज्ञानी का चारित्र कहा गया है ।

५१. यदि पापनिरोधोन्य सम्पदा कि प्रयोजनम् ।
अथ पापास्रवो स्त्यन्य सम्पदा कि प्रयोजनम् ॥२७ र. सा.

यदि पाप का निरोध है, तो अन्य सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है ? यदि पाप का आश्रव होता है, तो अन्य सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है ?

५२ अनतसुखसपन्न येनात्माय क्षणादपि ।
नमस्तस्मै पवित्राय चारित्राय पुन. पुनः ॥

जिसके द्वारा यह जीव क्षण मात्र मे अनत सुख को प्राप्त करता है, उस सम्यक् चारित्र को पुन. पुन प्रणाम है ।

५३. दाण पूजा मुक्ख सावय धम्मे ण सावया तेण विणा ।
झाणज्झयण मुक्ख जइ धम्मे ण त विणा तहा सोवि ॥११
रयणसार

दान तथा पूजा श्रावक के मुख्य धर्म हैं । इनके विना श्रावक नही होता है । ध्यान और अध्ययन मुख्य रूप से मुनि के धर्म हैं । इनके विना मुनि नही होते हैं ।

५४ अभीष्ट फलमाप्नोति व्रतवान्परजन्मनि ।
न व्रतादपरो बधु नाव्रतादपरो रिपु ॥ ७६-३७४ उत्तरपुराण

व्रती पुरुष आगामी भव मे मनोवाछित फल को प्राप्त करता है। अहिंसा आदि व्रतो के समान जीव का कोई वन्धु नही है । हिंसा आदि पापाचरण के समान अन्य शत्रु नही है ।

५५ यावन्न सेव्या विपयास्तावत्ताना प्रवृत्तितः ।
व्रतयेत् सव्रतो दैवान्मृतोऽमुत्र सुखायते ।। २-७७ सागारधर्मामृत

जव तक इद्रियो के द्वारा विपयो का सेवन नहीं होता है, तव तक के लिए पुन प्रवृत्ति पर्यन्त उनका त्याग करे। दैववश व्रत युक्त मरण हो गया तो परलोक मे जीव सुखी रहेगा।

५६ वहिरात्मा शरीरादौ जातात्म भ्रान्ति रान्तर ।
चित्त दोपात्म विभ्राति परमात्माति निर्मल ।।५ समाधिशतक

शरीरादि मे आत्मापने का भ्रम युक्त जीव वहिरात्मा है । चित्त, रागादि दोप तथा आत्मा के विपय मे भ्राति रहित अन्तरात्मा है। समस्त दोपो से रहित अत्यन्त निर्मल परमात्मा है।

५७ मूल ससारदु खस्य देह एवात्मधीस्तत ।
त्यक्त्वैना प्रविशेदत र्वहिर व्यापृतेन्द्रिय. ।। १५ स श

ससार के दु खो का मूल शरीर मे ही आत्म वुद्धि है। इस मिथ्या धारणा को त्याग कर वाह्य पदार्थों मे इद्रियो की प्रवृत्ति को रोककर अपनी आत्मा मे प्रवेश करना चाहिए।

५८ एव त्यक्त्वा वहिर्वाच त्यजेदरन्तरशेपत ।
एप योग. समासेन प्रदीप परमात्मन ।। १७ स श

इस प्रकार अन्तरात्मा वाहरी वचनो का त्यागकर पूर्ण रूप से अतर्जल्प का भी त्याग करे । इस प्रकार सक्षेप से वहिरग व अन्तरग वचनालाप का त्याग रूप योग परमात्मा के स्वरूप का प्रकाशक दीपक है।

५९ यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेपौ तपस्विन ।
तदैव भावयेत्स्वस्थ-मात्मान शाम्यत क्षणात् ।। ३९ स. श

जिस समय तपस्वी के मोह के कारण राग तथा द्वेप उत्पन्न होते है, उसी समय अपने स्वरूप मे स्थित हो आत्मा की भावना करे । इससे क्षण भर मे राग-द्वेप शात हो जाते है।

६० बहिरंतर-प्प-भेय परसमय भण्णते जिण देहि ।
परमप्पो सग समय तब्भेग जाण गुणठाणे ॥१४८॥ रयणसार
बहिरंतरात्म-भेद परसमय भण्यते जिनेन्द्रैः ।
परमात्मा स्वक समय तद्भेद जानीहि गुणस्थाने ॥

जिनेन्द्र ने बहिरात्मा और अन्तरात्मा के भेद रूप 'पर-समय' कहा है, परमात्मा 'स्वसमय' है। उसके भेदों को इस प्रकार गुणस्थानों में जानना चाहिये।

६१. मिस्सोत्ति बहिरप्पा तरतमया तुरिय अतरप्प-जहण्णा ।
सतोत्ति मज्झिमतर खीणुत्तम परम जिण-सिद्धा ॥१४९॥
मिश्रेति बहिरात्मा तरतमकः तुर्ये अंतरात्म-जघन्यः ।
शातेति मध्यमान्त क्षीणे उत्तम. परमाः जिनसिद्धाः ॥

मिथ्यात्व, सासादन तथा मिश्र गुणस्थान मे बहिरात्मा कहा है। चौथे गुणस्थान मे अन्तरात्मा का जघन्य है। उपशांत कषाय पर्यन्त मध्म अन्तरात्मा है। क्षीण कषाय मे उत्तम अन्तरात्मा है। जिनेन्द्र भगवान (केवली) तथा सिद्ध परमात्मा 'स्व समय' हैं।

६२ एक्को करेदि कम्मं एक्को हिंडदि य दीह ससारे ।
एक्को जायदि मरदि य तस्य फल भुजदे एक्को ॥ १४॥ अनुप्रेक्षा
एक करोति कर्म एक हिण्डति च दीर्घ ससारे।
एक जायते म्रियते च तस्य फल भुक्ते एक ॥

एक जीव कर्म का बध करता है। वही जीव अकेला अनत ससार मे भ्रमण करता है। एक जीव उत्पन्न होता है। वही जीव मृत्यु को पाता है। वह अकेला कर्म के फल को भोगता है।

६३ एक्को करेदि पाव विसय णिमित्तेण तिव्वलोहेण ।
णिरय-तिरियेसु जीवो तस्य फल भुजदे एक्को ॥१५॥
एक करोति पाप विषय निमित्तेन तीव्रलोभेन ।
नरक तिर्यक्षु जीवो तस्य फल भुक्ते एक ॥

एक जीव तीव्र लोभवश विषय के निमित्त पाप करता है, वही अकेला जीव नरक और तिर्यंच पर्याय मे उस पाप का फल भोगता है।

९४ एक्को करेदि पुण्ण धम्मणिमित्तेण पत्तदाणेण ।
मणुव देवेसु जीवो तस्स फल भुजदे एक्को ॥१६॥ अनु ॥
एक करोति पुण्य धर्म निमित्तेन पात्रदानेन ।
मानव देवेसु जीव तस्य फल भुक्ते एक ॥

एक जीव पात्र दान द्वारा धर्म के निमित्त से पुण्य का अर्जन करता है वही जीव अकेला मनुष्य तथा देवो मे उस पुण्य का फल भोगता है।

९५ पच विहे ससारे जाइ–जरा–मरण–रोग–भय–प्पउरे ।
जिणमग्ग–मपेच्छतो जीवो परिभमदि चिरकाल ॥२४॥
पचविधे ससारे जाति–जरा–मरण–रोग–भय–प्रचुरे ।
जिनमार्ग–मपश्यन् जीव परिभ्रमति चिरकालम् ॥

यह जीव जिन भगवान द्वारा प्रदर्शित मार्ग का परिज्ञान न कर जन्म, जरा, मरण रोग तथा भय परिपूर्ण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव रूप ससार मे चिरकाल तक भ्रमण करता है।

९६ सव्वे वि पोग्गला खलु एगे भुत्तुज्झिया हु जीवेण ।
असय अणतखुत्तो पुग्गल परियट्ट ससारे ॥२५॥
सर्वेपि पुद्गला: खलु एकेन भुक्तोज्झिता हि जीवेन ।
असकृदनतकृत्व पुद्गल–परिवर्त ससारे ॥

इस जीव ने पुद्गल परावर्तन रूप ससार मे सपूर्ण पुद्गलो को अनन्त बार भोग कर उनका परित्याग किया है। ऐसा एक भी पुद्गल नही है जिसे जीव ने अनन्त बार न भोगा हो।

९७ सव्वम्हि लोयखेत्ते कमसो तण्णत्थि जण्ण उप्पण्ण ।
उग्गाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्त ससारे ॥२६॥
सर्वस्मिन् लोक क्षेत्रे क्रमश तन्नास्ति यत्र न उत्पन्न: ।
अवगाहनेन बहुश परिभ्रमित क्षेत्र ससारे ॥

सपूर्ण लोक रूपी क्षेत्र में ऐसा स्थान नहीं है जहा इस जीव ने उत्पन्न होकर तथा उस स्थान मे शरीर धारण कर अनेक बार क्षेत्र रूपी ससार में परिभ्रमण न किया हो।

६८ पुत्तकलत्त निमित्त अत्थ अज्जयदि पावबुद्धीए,
परिहरदि दयादाण सो जीवो भमदि ससारे ॥ ३० ॥
पुत्र-कलत्र निमित्त अर्थ अर्जयति पापबुद्धया ।
परिहरति दयादान स: जीव: भ्रमति संसारे ॥

यह जीव पाप बुद्धि युक्त हो, पुत्र तथा स्त्री के निमित्त धन कमाता है तथा दया और दान नही करता है। ऐसा जीव ससार मे भ्रमण करता है।

६९ मम पुत्त मम भज्जा मम धण-धण्णोत्ति तिव्व कखाए।
चइऊण धम्मबुद्धि पच्छा परिपडदि दीह ससारे ॥ ३१ ॥
मम पुत्रो मम भार्या मम धन धान्य मिति तीव्र काक्षया
त्यक्त्वा धर्मबुद्धि पश्चात्, परिपतति दीर्घ ससारे ॥

यह जीव धर्म बुद्धि का त्याग कर मेरा पुत्र है, मेरी स्त्री है, मेरा धन और धान्य है, ऐसी तीव्र लालसा के फलस्वरूप सुदीर्घ ससार में डूबता है।

७० हतूण जीवरासि महु-मस सेविऊण सुरपाण।
परदव्व परकलत्त गहिऊण य भमदि ससारे ॥ ॥ ३३ ॥
हत्वा जीवराशि मधु-मास सेवित्वा सुरापानम् ।
परद्रव्य-परकलत्र गृहीत्वा च भ्रमति ससारे ॥

यह जीव जीवराशि को मारकर मधु, मास तथा मदिरा का पान करता है, दूसरे का धन और पत्नी को ग्रहण कर ससार मे भ्रमण करता है।

७१ जत्तेण कुणइ पाव विसय णिमित्त च अहणिस जीवो।
मोहध-यार सहिओ तेण दु परिपडदि ससारे ॥
यत्नेन करोति पाप विपय निमित्त च अहर्निश जीव'।
मोहान्धकार सहित. तेन तु परिपततिससारे ॥

यह जीव दिन रात विपयो के निमित्त यत्नपूर्वक पाप कार्य करता है (यह यत्न पूर्वक धर्म कार्य नही करता) इस कारण यह मोह रूपी अधकार सहित ससार मे डूवता है।

७२. ससार मदिक्कतो जीवो–वादेय मिदि विचितेज्जो ।
ससार–दुहक्कतो जीवो सो हेय मिदि विचितेज्जो ॥ ३८ ॥
ससार अतिक्रान्त जीव उपादेयमिति विचितनीयम् ।
ससार दु खाक्रान्त· जीव स हेय इति विचितनीयम् ॥

ससार से अतिक्रान्त जीव उपादेय है ऐसा चितवन करे। सासारिक दु खो से आक्रान्त जीव हेय है ऐसा विचार करे।

७३ असुहेण णिरय तिरिय सुह-उवजोगेण दिविज-णर-सोक्ख ।
सुद्धेण लहइ सिद्धि एव लोय विचितिज्जो ॥ ४२ ॥
अशुभेन नरक तिर्यच शुभोपयोगेन दिविजनर सौख्यम् ।
शुद्धेन लभते सिद्धि एव लोक विचितनीय· ॥

अशुभ भाव से यह जीव नरक और तिर्यंच पर्याय को पाता है। शुभ उपयोग से स्वर्ग तथा मनुष्य पर्याय के सुख को भोगता है । शुद्ध भाव से मोक्ष प्राप्त करता है। इस प्रकार लोक के विपय मे विचार करें।

७४ णिरया हवति हेट्ठा मज्झे दीववु रासयो सखा ।
सग्गो तिसट्ठिभेयो एत्तो उड्ढ हवे मोक्खो ॥ ४० ॥
नरका भवति अधस्तने मध्ये द्वीपाम्बुराशया असख्या ।
स्वर्ग त्रिपष्ठि भेद. एतस्मात् उर्ध्व भवेत् मोक्ष ।

अधोलोक मे नारकी जीव रहते हैं। मध्य लोक मे असख्यात द्वीप समूह है। इसके ऊपर स्वर्ग लोक के ६३ पटल है। इसके ऊपर मोक्ष है।

७५ देहादो वदिरित्तो कम्मविरहिओ अणत सुह णिलयो ।
चोक्खो हवेइ अप्पा इदि णिच्च भावण कुज्जा ॥ ४६ ॥
देहात, व्यतिरिक्त. कर्म विरहित अनतसुख निलय ।
प्रशस्त. भवेत् आत्मा इति नित्य भावना कुर्यात् ॥

देह से भिन्न, कर्म से रहित, अनन्त सुख का स्थान शुद्ध आत्मा है इस प्रकार सदा भावना करें।

७६ चल मलिण–मगाढ न वज्जिय सम्मत्त–दिढ–कवाडेण।
मिच्छासव–दार–णिरोहो होदित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठ ॥६१॥
चलमलिन–मगाढ न वर्जयित्वा सम्यक्त्व–दृढ–कपाटेन।
मिथ्यात्वास्राव-द्वार-निरोध भवति इति जिनैः निर्दिष्टम् ॥

जिनेन्द्र ने कहा है कि चल, मलिन तथा अगाढ दोष रहित सम्यक्त्व रूपी मजबूत कपाट के द्वारा मिथ्यात्व के आगमन का द्वार बंद होता है।

७७ पच महव्वय–मणसा अविरमण-णिरोहण हवे नियमा।
कोहादि आसवाण दाराणि कसायरहिय पल्लगेहि (?) ॥६२॥
पच महाव्रत मनसा अविरमण निरोधन भवेत् नियमात्
क्रोधादि आस्रवाणा द्वाराणि कषायरहित परिणामैः।

पच महाव्रत युक्त मनोवृत्ति द्वारा अविरति भाव का निरोध होता है तथा कषाय रहित परिणामो से नियम पूर्वक क्रोध, मान, माया, लोभ द्वारा होने वाले आस्रवो का द्वार बद होता है।

७८ सुहजोगेसु पवित्ती सवरण कुणदि असुह जोगस्स।
सुहजोगस्स णिरोहो सुद्धुव जोगेण सभवदि ॥ ६३ ॥
शुभयोगेषु प्रवृत्ति सवरण करोति अशुभयोगस्य ॥
शुभ योगस्य निरोध शुद्धोपयोगेन सभवति ॥

शुभ योगो मे प्रवृत्ति अशुभ योग का सवर करती है, शुद्ध उपयोग के द्वारा शुभ योग का निरोध होता है।

७९ मोत्तूण असुहभाव पुव्वुत्त णिरवसेसदो दव्व।
वद-समिदि-सील-सजम-परिणाम सुहमण जाणे ॥ ५४ ॥
मुक्त्वा अशुभ भाव पूर्वोक्त निरवशेषत द्रव्यम्।
व्रत-समिति-शील-सयम-परिणाम शुभमन जानीहि ॥

अशुभ परिणामों का पूर्ण रूप से त्याग कर जो व्रत, समिति, शील तथा सयम के भाव होते हैं, वह शुभ मनोयोग जानना चाहिये।

८० ससार छेदकारण-वयण सुहवयणमिदि जिणुद्दिट्ठ।
जिणदेवादिसु पूजा सुहकायत्ति य हवे चेट्ठा। ॥ ५५ ॥
ससारच्छेद-कारण-वचन शुभ वचन मिति जिनोद्दिष्टम्।
जिनदेवादिपुत पूजा शुभ काय मिति च भवेत् चेष्टा॥

ससार के विनाश करने मे कारण वचन शुभ वचन योग है। जिनेन्द्र देव की पूजा आदि शुभ कार्य रूप चेष्टा शुभ काय योग है, ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है।

८१ इदि णिच्छय-ववहार ज भणिय कुदकुद मुणिणाहे।
जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परम णिव्वाण ॥९१॥ अनुप्रेक्षा
इति निश्चय-व्यवहार यत् भणित कुदकुद मुनिनाथेन।
य भावयति शुद्धमना स प्राप्नोति परम निर्वाणम्।

इस प्रकार कुन्दकुन्द मुनीश्वर ने व्यवहार और निश्चय दृष्टि से कथन किया है। उसके अनुसार जो शुद्ध मन होकर द्वादश भावनाओं का चिंतवन करता है, वह परम निर्वाण को प्राप्त होता है।

८२ तम्हा सम्मादिट्ठी पुण्ण मोक्खस्स कारण हवइ।
इदि णाऊण गिहत्थो पुण्ण चाउरउ जत्तेण ॥४२४॥ भावसग्रह
तस्मात् सम्यग्दृष्टेः पुण्य मोक्षस्य कारण भवति।
इति ज्ञात्वा गृहस्थ. पुण्य चार्जयतु यत्नेन॥

सम्यग्दृष्टि का पुण्य मोक्ष का कारण होता है। इस कारण गृहस्थ को प्रयत्न पूर्वक पुण्य का उपार्जन करना चाहिये।

८३ सुद केवल च णाण दोण्णि वि सरिसाणि होति वोहादो।
सुदणाण तु परोक्ख पच्चक्ख केवल णाण॥३६९॥गो जीवकाण्ड
श्रुत केवल च ज्ञान द्वे अपि सदृशे भवतो बोधात्।
श्रुतज्ञान तु परोक्ष प्रत्यक्ष केवल ज्ञानम्

ज्ञान की अपेक्षा श्रुतज्ञान और केवलज्ञान समान हैं। इनमें श्रुतज्ञान परोक्ष है। केवलज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है।

८४ पण्णव णिज्जा भावा अणतभागो दु अणभि लप्पाण।
पण्णवणिज्जाण पुण अणतभागो सुदणिबद्धो ॥२३८॥
प्रज्ञापनीयाभावा अनत भागस्तु अनभिलाप्यानाम्।
प्रज्ञापनीयाना पुन अनतभागः श्रुतनिबद्ध ॥

सपूर्ण पदार्थों का अनत बहुभाग वाणी के अगोचर है। उनका अनंतवा भाग वाणी के गोचर है। वाणी के गोचर पदार्थों का अनन्तवा भाग श्रुतज्ञान मे निबद्ध है।

८५ आत्मान सिद्ध माराध्य प्राप्नोत्यात्मापि सिद्धताम्।
वर्तिः प्रदीप मासाद्य यथाप्येति प्रकाशताम् ॥ ज्ञानार्णव

यह आत्मा आत्मा की सिद्ध स्वरूप से आराधना कर सिद्धावस्था को प्राप्त करती है, जैसे दीपक का सपर्क पाकर वत्ती प्रकाशरूपता को प्राप्त करती है।

८६ आराध्यात्मान मेवात्मा परमात्मत्व मश्नुते।
यथा भवति वृक्षः स्व स्वेनोद्घृष्य हुताशनः ॥

आत्मा अपनी आत्मा की आराधना ( अभेद आराधना ) द्वारा परमात्मा वनती है, जैसे वृक्ष आपस मे सघर्ष युक्त हो अग्निरूप स्वय परिणत होता है।

८७ तिल मध्ये यथा तैल दुग्ध मध्ये यथा घृत।
काष्ठ मध्ये यथा वह्निः देह मध्ये तथा शिवः ॥

जैसे तिल के भीतर तेल रहता है, दूध के भीतर घृत रहा करता है तथा काष्ठ के भीतर अग्नि (शक्ति रूप से) विद्यमान रहती है, उसी प्रकार इस शरीर के भीतर परमात्मा रहता है।

८८ देहान्तर्गते वीज देहेऽस्मिन् आत्मभावना।
वीज विदेह निष्पत्ते रात्मन्येवात्मभावना ॥ ७४ स श

इस शरीर मे आत्मा की भावना शरीरातर धारण करने का मूल कारण है। अपनी आत्मा मे ही आत्मा की भावना विदेहपना (मुक्त होने) का मूल कारण है।

८९ मोक्षेपि यस्य नाकाक्षा स मोक्ष मधिगच्छति ।
इत्युक्तत्वात् हितान्वेषी काक्षा न कापि योजयेत् ॥ २१
स्वरूप सबोधन

जिसके मोक्ष की भी इच्छा नही है, वह आत्मा मोक्ष को प्राप्त करती है, ऐसा आगम मे कहा है। इसलिए आत्महित चाहने वाले को समस्त इच्छाओ का त्याग करना चाहिए।

९० वपु गृंह धन दारा पुत्रा मित्राणि शत्रव ।
सर्वथान्य स्वभावानि मूढ स्वानि प्रपद्यते ॥ ८ इष्टो

शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र, शत्रु सब जीव से भिन्न स्वभाव वाले है। अज्ञानी आत्मा उनको अपना मानता है।

९१ निर्धनत्व धन येषा मृत्युरेव हि जीवितम् ।
कि करोति विधिस्तेषा सता ज्ञानैक चक्षुषाम् ॥ १६२
आत्मानुशासन

जिनके निर्धनता-अकिंचनपना ही धन है और समाधि सहित मरण सच्चा जीवन है, उन ज्ञान नेत्र युक्त सत्पुरुषो का दैव क्या करेगा ?

९२ करोतु न चिर घोर तप क्लेशासहो भवान् ।
चित्त साध्यान् कषायारीन् न जयेद्यत्तदज्ञता । २१२ आ शा

आत्मन! तपस्या के महान कष्ट सहन करने मे असमर्थ होने से तू तप मत कर, किंतु मन के द्वारा जीतने योग्य कषायरूपी शत्रुओ को यदि वश मे नहीं करता है तो यह तेरी अज्ञानता है।

९३ जीवोन्य पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्वसग्रह ।
यदन्य दुच्यते किंचित् सोस्तु तस्यैव विस्तर ॥ ५० इष्टोपदेश

जीव अन्य है, पुद्गल भी अन्य है, यह तत्त्व का सार है। इसके सिवाय जो कुछ कहा जाता है, वह उसी कथन का विस्तार है।

९४ परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अतएव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः ॥ ४५ इष्टो.

शरीरादि पर पदार्थ है अर्थात् आत्मा से भिन्न है। पर वस्तु से जीव को दुःख प्राप्त होता है। आत्मा जीव की निज वस्तु है, उससे सुख प्राप्त होता है, इसलिए महापुरुष आत्मोपलब्धि के लिए उद्योग करते हैं।

९५ भय याहि भवाद्भीमात् प्रीति च जिनशासने।
शोक पूर्वकृतात्पापात् यदीच्छसि हित मात्मनः ॥

आत्मन्! यदि तू अपना कल्याण चाहता है, तो इस भीषण संसार से डर। भगवान् जिनेन्द्र के शासन मे प्रेम कर और पूर्व मे किये गये पापो के कारण शोक कर।

९६ अभय यच्छ जीवेषु कुरु मैत्री मनिन्दिताम्।
पश्यात्म सदृश विश्व जीवलोक चराचरम् ॥ ज्ञानार्णव

आत्मन्! सम्पूर्ण जीवो को अभयदान दो। सबके प्रति निर्मल मैत्री भाव धारण करो और विश्व के चराचर समस्त प्राणी मात्र को अपने समान देखो।

९७ सव्वजगस्स हिदकरो धम्मो तित्थकरेहि अक्खादो।
धण्णा त पडिवण्णा विसुद्धमणसा जगे मणुआ ॥ मूलाचार

तीर्थंकर भगवान ने सम्पूर्ण जगत के लिए हितकारी धर्म का निरूपण किया है। इस जगत् मे जो मानव निर्मल हृदय होकर उसका पालन करते हैं, वे धन्य है।

९८ उत्तमा स्वात्म चिन्ता स्यात् मोहचिन्ता च मध्यमा।
अधमा काय चिन्ता स्यात् पर चिन्ताऽधमाधमा ॥ ४ ॥
परमानन्द स्तोत्र

आत्मा के बारे मे चिन्ता करना श्रेष्ठ कार्य है। मोह की चिन्ता करना मध्यम कार्य है। शरीर की चिन्ता करना जघन्य कार्य है। बाहरी वस्तुओ की चिन्ता करना महान अधम कार्य है।

९९ ततस्त्व दोष निर्मुक्त्यै निर्मोहो भव सर्वत ।
उदासीनत्व माश्रित्य तत्त्वचिन्ता परो भव ॥ १८ ॥

स्वरूप सबोधन

हे आत्मन् ! दोषो से रहित होने के लिए तू पूर्णतया मोह रहित होकर उदासीन भावना को प्राप्त करते हुए तत्वो के चिंतन मे तत्पर हो।

१०० तवरहियं ज णाण णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थ ।
तम्हा णाण-तवेण सजुत्तो लहइ णिव्वाण ॥ ५९ मोक्षप्राभृत

तप रहित ज्ञान इष्ट सिद्धि नही प्रदान करता है। ज्ञान रहित तप भी अकृतार्थ है। इसलिए ज्ञान और तप सयुक्त श्रमण निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

# प्रकीर्णक

## संयम शरण

सच्ची अध्यात्म-विद्या का प्रकाश जिस महाभाग को प्राप्त होता है, वह निरन्तर सयम पालन के लिए उत्कठित होता है। लौकान्तिक देवों का सयम प्रेम इतना अपूर्व रहता है, कि तीर्थकर के सयम कल्याणक मे सर्व प्रथम आकर वे स्वय को कृतार्थ अनुभव करते है। जैसे मिश्री मधुरता के कारण सर्वप्रिय होती है, एसी ही स्थिति सयमी जीवन की है। सूर्य के प्रकाश को सारा विश्व अच्छा मानता है, किन्तु कुछ ऐसे भी जीव है, जिन्हें वह प्रकाश पसन्द नही आता। इसी प्रकार सयम-प्राण जिन धर्म मे ऐसे भी अध्यात्म प्रेमी कहे जाने वाले व्यक्ति दिखाई पडते हैं, जो यम मदिर मे प्रवेश पाने की स्थिति युक्त होते हुए भी सयम से द्वेष करते हैं और सयमियो की निन्दा करना अपना कर्त्तव्य मान बैठे है।

महर्षि कुन्दकुन्द ने कहा है, कि निर्मल श्रद्धा और ज्ञान से समलकृत हो जाने पर भी "असजदो ण णिव्वादि" (प्रवचनसार, २३७) असयमी मोक्ष नही जाता। गांधी जी ने महत्वपूर्ण बात कही थी, "सयम का स्वागत दुनिया के तमाम शास्त्र करते हैं। स्वच्छदता के बारे में शास्त्रो मे भारी मतभेद हैं। समकोण सब जगह एक ही प्रकार का होता है, दूसरे कोण अगणित है।" (नवजीवन सन् १९३३)

"सयमहीन स्त्री या पुरुष को गया-बीता ही समझिए। इन्द्रियो को निरंकुश छोड देने वाले का जीवन कर्णधारहीन नाव के समान है, जो निश्चय से पहले ही चट्टान से टकराकर नष्ट हो जायेगी।"

"इद्रिय दमन धर्म है। उससे आत्मा का लाभ होता है। मनुष्य की देह भोग के लिए हरगिज नही है। भोग मे मृत्यु है, त्याग मे जीवन है। आत्मदर्शन की इच्छा रखने वालो के लिए पहला पाठ यह नियम पालने का बताया है।"

"प्रतिज्ञाहीन जीवन बिना नींव का घर है, अथवा यूं कहिये कि कागज की जहाज है। प्रतिज्ञा न लेने का अर्थ अनिश्चित या डावाडोल रहना है। ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसे तपस्या के द्वारा इंसान न पा सके। व्रत बन्धन नहीं है। व्रत बन्धन से पृथक रहकर मनुष्य मोह में फंसता है। व्रत स्वतन्त्रता का द्वार है।" गांधी जी ने यह महत्वपूर्ण बात लिखी है। वह हमारे संयम विरोधी वर्ग के गुरु तथा शिष्यों को मनन योग्य है। गांधी सेवा-संघ में बापू ने कहा था—"किसी आदमी के विचार को हमने ग्रहण तो किया, किन्तु हजम नहीं किया। बुद्धि से तो उन्हें ग्रहण कर लिया, पर हृदयस्थ नहीं किया। उन पर अमल नहीं किया, तो वह एक प्रकार की बदहजमी ही है। बुद्धि का विलास है। विचारों की बदहजमी खुराक की बदहजमी से कहीं बुरी है। खुराक की बदहजमी के लिए तो दवा है, पर विचारों की बदहजमी की नहीं है। वह आत्मा को बिगाड़ देती है।"

सभी समझदार पवित्र विचार के साथ आचरण पर जोर देते हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू ने इन्दिरा गांधी को दिये गये पत्र में फ्रांस के नोबुल पुरस्कार विजेता विद्वान् रोम्या रोलां के ये वाक्य दिये थे, "जो विचार कर्म की ओर प्रवृत्त न हो वह सबसे सब निरर्थक और महान विश्वासघात है।" उन्होंने यह भी लिखा था—"प्यारी बेटी, विश्व के सौन्दर्य को सराहना तथा विचार और कल्पना के जगत् में विचरण करना आसान है। विचार तब ही सार्थक है, जबकि वे कार्य रूप में प्रगट हों। कर्म ही विचार की अंतिम परिणति है।"

एक मुस्लिम महाज्ञानी से किसी व्यक्ति ने पूछा—"आलिम बे-अमल" अर्थात् आचरण शून्य विद्वान कैसा है? उन्होंने उत्तर दिया, ऐसा व्यक्ति फल वाले उस वृक्ष के सदृश है, जिसमें एक भी फल नहीं है। उनके शब्द हैं—"दरख्त बेसा नदारत"।

हमारे एकांतवादी वर्ग को उपरोक्त कथन के बारे में गहराई से सोचना चाहिए। वे अपने तत्वज्ञान की मधुरता की मधुर चर्चा चलाते समय संयम के प्रति जो घृणा तथा द्वेष भाव दिखाते हैं, वह क्या जैन नाम के अनुरूप है? जैन वासनाओं का गुलाम नहीं होता। भोग में अंधा व्यक्ति जीवन की क्षणिकता के बारे में नहीं सोचता। धन के संचय में प्रवीण

# प्रकीर्णक

## संयम शरणं

सच्ची अध्यात्म-विद्या का प्रकाश जिस महाभाग को प्राप्त होता है, वह निरन्तर सयम पालन के लिए उत्कंठित होता है। लौकान्तिक देवों का सयम प्रेम इतना अपूर्व रहता है, कि तीर्थंकर के सयम कल्याणक मे सर्व प्रथम आकर वे स्वय को कृतार्थ अनुभव करते है। जैसे मिश्री मधुरता के कारण सर्वप्रिय होती है, ऐसी ही स्थिति सयमी जीवन की है। सूर्य के प्रकाश को सारा विश्व अच्छा मानता है, किन्तु कुछ ऐसे भी जीव है, जिन्हें वह प्रकाश पसन्द नही आता। इसी प्रकार सयम-प्राण जिन धर्म मे ऐसे भी अध्यात्म प्रेमी कहे जाने वाले व्यक्ति दिखाई पडते हैं, जो यम मदिर मे प्रवेश पाने की स्थिति युक्त होते हुए भी सयम से द्वेष करते है और सयमियो की निन्दा करना अपना कर्त्तव्य मान बैठे हैं।

महर्षि कुन्दकुन्द ने कहा है, कि निर्मल श्रद्धा और ज्ञान से समलकृत हो जाने पर भी "असजदो ण णिव्वादि" (प्रवचनसार, २३७) असयमी मोक्ष नही जाता। गाँधी जी ने महत्वपूर्ण बात कही थी, "सयम का स्वागत दुनिया के तमाम शास्त्र करते हैं। स्वच्छदता के बारे मे शास्त्रो मे भारी मतभेद हैं। समकोण सब जगह एक ही प्रकार का होता है, दूसरे कोण अगणित है।" (नवजीवन सन् १९२३)

"सयमहीन स्त्री या पुरुष को गया-बीता ही समझिए। इन्द्रियों को निरंकुश छोड देने वाले का जीवन कर्णधारहीन नाव के समान है, जो निश्चय से पहले ही चट्टान से टकराकर नष्ट हो जायेगी।"

"इद्रिय दमन धर्म है। उससे आत्मा का लाभ होता है। मनुष्य की देह भोग के लिए हरगिज नहीं है। भोग मे मृत्यु है, त्याग मे जीवन है। आत्मदर्शन की इच्छा रखने वालो के लिए पहला पाठ यह नियम पालने का बताया है।"

"प्रतिज्ञाहीन जीवन बिना नींव का घर है, अथवा यूं कहिये कि कागज की जहाज है। प्रतिज्ञा न लेने का अर्थ अनिश्चित या डावाडोल रहना है। ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसे तपस्या के द्वारा इन्सान न पा सके। व्रत बन्धन नहीं है। व्रत बन्धन से पृथक रहकर मनुष्य मोह में फंसता है। व्रत स्वतन्त्रता का द्वार है।" गांधी जी ने यह महत्वपूर्ण बात लिखी है। वह हमारे संयम विरोधी वर्ग के गुरु तथा शिष्यों को मनन योग्य है। गांधी सेवा-संघ में बापू ने कहा था—"किसी आदमी के विचार को हमने ग्रहण तो किया, किन्तु हजम नहीं किया। बुद्धि से तो उन्हें ग्रहण कर लिया, पर हृदयस्थ नहीं किया। उन पर अमल नहीं किया, तो वह एक प्रकार की बदहजमी ही है। बुद्धि का विलास है। विचारों की बदहजमी खुराक की बदहजमी से कहीं बुरी है। खुराक की बदहजमी के लिए तो दवा है, पर विचारों की बदहजमी की नहीं है। वह आत्मा को बिगाड़ देती है।"

सभी समझदार पवित्र विचार के साथ आचरण पर जोर देते हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू ने इन्दिरा गांधी को दिये गये पत्र में फ्रांस के नोबुल पुरस्कार विजेता विद्वान् रोम्या रोलां के ये वाक्य दिये थे, "जो विचार कर्म की ओर प्रवृत्त न हो वह सबके सब निरर्थक और महान विश्वासघात है।" उन्होंने यह भी लिखा था—"प्यारी बेटी, विश्व के सौन्दर्य को सराहना तथा विचार और कल्पना के जगत् में विचरण करना आसान है। विचार तब ही सार्थक है, जबकि वे कार्य रूप में प्रगट हों। कर्म ही विचार की अंतिम परिणति है।"

एक मुस्लिम महाज्ञानी से किसी व्यक्ति ने पूछा—"आलिम बे-अमल" अर्थात् आचरण शून्य विद्वान कैसा है? उन्होंने उत्तर दिया, ऐसा व्यक्ति फल रहित उस वृक्ष के सदृश है, जिसमें एक भी फल नहीं है। उनके शब्द हैं—"दरख्त बेसमर नदारत"।

हमारे एकांतवादी वर्ग को उपरोक्त कथन के बारे में गहराई से सोचना चाहिए। वे अपने तत्वज्ञान की मधुरता की मधुर चर्चा चलाते समय संयम के प्रति जो घृणा तथा द्वेष भाव दिखाते हैं, वह क्या जैन नाम के अनुरूप है? जैन वासनाओं का गुलाम नहीं होता। भोग में अंधा व्यक्ति जीवन की क्षणिकता के बारे में नहीं सोचता। धन के संचय में प्रवीण

भोगासक्त एकान्ती वर्ग को यह सोचना चाहिए, कि उसकी सम्पत्ति का उनका सदा साथ नहीं देगी।

अकबर ने सुन्दर चेतावनी दी है—

सेठ जी को फिक्र थी, एक एक के दस कीजिए।
मौत आ पहुँची कि हजरत, जान वापिस कीजिये॥

बडे-बडे भवनो मे निवास कर आनन्द प्राप्त करना और पुण्य जीवन से दूर रहने वालो को कबीरदास कहते हैं—अरे मूर्ख किसके लिए बडा भवन बनाता है? मरने पर तेरे शरीर को थोडी ही जगह तो लगेगी :—

कहा चुनावे मेढिया लावी भीत उसार।
घर तो साढे तीन हथ, घना की पौने चार॥

मजा मौज उडाने वाले वर्ग को एक कवि बडी फटकार देता है—

प्रभु सुमरन को आलसी, भोजन को तैयार।
ज्ञानी ऐसे नरक को बार बार धिक्कार॥

एक बार कानजी पंथी मण्डली के बीच मे हमारा सयम के बारे मे भाषण हुआ। हमने लोगो से पूछा था—"आप लोगो को पर्यूषण मे बडी शाति मिलती है और व्रत बीतने के बाद सभी आपस मे बात करते हैं। कैसे सुन्दर वे दिन थे जब अन्त करण विशेष शाति का अनुभव करता था।" हमने कहा था, "दिन और रात तो वे ही हैं, जो व्रतो के पहले और बाद मे रहते हैं। पर्यूषण के पुण्यकाल मे अन्तर इतना ही है कि उस समय हमारी आत्मा सयमी जीवन के सौरभ से सुगधित रहती है। इससे शाति और आनन्द की अनुभूति होती है।"

भ्रम—यह कहा जाता है, कि सयम अपने आप आ जावेगा। उसके लिए प्रयत्न आवश्यक नही है। इस विषय मे आचार्य वादीभसिंह की वाणी स्मरण योग्य है। "हेये स्वय सती बुद्धि यत्नेनाप्यसती शुभे"—हेय कार्यो मे बुद्धि स्वय जाती है तथा प्रयत्न करने पर भी वह सत्कार्यो मे नही जाती है। जैसे पानी स्वय नीचे की ओर जाता है, उसी प्रकार अनादिकालीन अविद्या के

कारण जीव की प्रवृत्ति त्याग से विमुख हो भोगों की ओर स्वयं जाती है। चोरी, बेईमानी आदि हीन आचरण के लिए कोई शिक्षा नहीं दी जाती है। नीच कृत्यों को यह जीव स्वयमेव स्वीकार करता है। अतः सदाचार या संयम अपने आप आ जायगा, यह समझ कल्पना मात्र है।

कोई कोई कहा करते हैं, सोनगढ के वृद्ध बाबा को सब प्रकार की सामग्री पुण्य ने प्रदान की है, (जिसके लिए वे अत्यन्त निकृष्ट उपमा देते हैं)। यदि वे सम्यक्त्वी हैं, तो सहज ही प्रतिमाधारी श्रावक बन सकते हैं। करीब चालीस वर्ष से वे अध्यात्म की गंगा में डुबकी लगाते हुए भी व्रतों की ओर न स्वयं झुकते हैं न दूसरे व्रतियों का सम्मान करते हैं उनसे ऐसा लगता है, जैसे कुशीलवती स्त्री पतिव्रता महिला को शील धारण करने के कारण अवाच्य शब्दों से कहती हो।

एक अजैन वृद्ध भद्र पुरुष हमसे कहने लगे, 'आप लोगों में अध्यात्मवादी नया पंथ है, जो जैन धर्म की प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाने को तैयार हो रहा है। आपका जैन धर्म सदा चरित्र को ऊँचा स्थान देते रहा है। आज उसके विपरीत ये लोग अध्यात्मवाद के नाम पर विलासपूर्ण जीवन को उभार रहे हैं। यह स्थिति आपकी समाज के लिए तथा भारत देश के लिए अच्छी नहीं है। परोपकार, जीवदया, सार्वजनिक कल्याण की बात न कर कोरी आत्मा की रट लगाना और पापाचरण से विमुख न होना अहितकारी है।"

दक्षिण भारत के एक महान्ज्ञानी दि० जैन साधु स्व० आदिसागर महाराज ने बताया था कि जीवन की मोटर में 'ब्रेक' सदृश संयम है। थोड़ा भी संयम अथवा त्याग महान् हितप्रद होता है। त्याग का आनन्द भोग वाले नहीं जानते। उस सम्बन्ध में राष्ट्र के महान नेता स्व० पं० मोतीलाल नेहरू के सम्बन्ध में गांधीजी ने लिखा है, "जब मोतीलाल जी जेल गए, तब उन्होंने मेरे पास एक खत भेजा था। उसमें लिखा था "मैं सच्चा जीवन अब जेल में जी रहा हूँ आनन्द भवन में जो मेरे पास समृद्धि थी उसमें मुझे सुख नहीं मिलता था।" जेल में उन्हें सिगार, शराब, मांस कुछ भी नहीं मिलता था, पूरा भोजन भी नहीं मिलता था, फिर भी उन्हें उसमें सुख मालूम हुआ।" (गांधी संस्मरण और विचार पृष्ठ १२८)

जैनधर्म भक्कारी नहीं सिखाता। यह धर्म सच्चाई की आधारशिला पर अवलम्बित है। एकान्तवादी भाई जो कुन्दकुन्द स्वामि नाम

विदेह जाने की प्रसिद्धि गुप्त पूज्यपाद आचार्य की बात याद रखनी चाहिये, कि संचित धन, वैभव बहुत समय तक नही रहेगा। 'यमस्य करुणा नास्ति।' न जाने किस क्षण मृत्यु आकर प्राण हरण कर ले। समाधि रहित मरण होने पर जीव दुर्गति का पात्र बनता है। कानजी पंथ मे धन की बडी प्रतिष्ठा है। वहा चरित्र शून्य धनवानो को विशेष सम्मान मिलता है। उमास्वामी आचार्य तत्वार्थ सूत्र मे बडे-बडे उद्योगपतियों तथा व्यापारियों को उनका भविष्य इस प्रकार बताते है, "बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः। माया तैर्यग्योनस्य"—बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह वाला व्यक्ति नरकायुका बंध करता है। मायावी व्यक्ति पशु होता है।"

दयापात्र.—अन्याय करके खूब धन संग्रह करने वाले बडे सेठो को आचार्य शान्तिसागर महाराज ने कहा था,"हमे तुमको देखकर दया आती है। तुमने पूर्व पुण्योदय से प्राप्त लक्ष्मी रूप फल को खा लिया, अब आगे के लिए तुमने सत्कार्य नही किया। अतः तुम्हारा कुगति मे पतन हुए बिना नही रहेगा। थोडा भी संयम हितप्रद होता है। पशुओं ने व्रत पालन किये है। जो मनुष्य व्रतो से डरता है, वह पशुओ से भी गया बीता है।" सुकौशल मुनि के शरीर को उनके पूर्व जन्म की माता के जीव व्याघ्री ने खा लिया था, किन्तु वह व्याघ्री मरकर नरक नही गई। मुनि के गले मे मरा सांप श्रेणिक राजा ने डाला था, उससे उन क्षायिक सम्यक्त्वी का नरक गमन हुआ, क्योकि वे संयम धारण नही कर सके, किन्तु व्याघ्री ने जाति स्मरण के उपरान्त उपवास करके अपने पाप को नष्ट कर दिया था। इससे वह व्याघ्री स्वर्ग गई। संसार मे तप, व्रत, संयम, सदाचार की महत्ता सभी स्वीकार करते हैं। अंग्रेजी की यह कविता महत्वपूर्ण है।

If wealth is lost nothing is lost.
If health is lost some thing is lost.
If character is lost every thing is lost.

यदि धन नष्ट हुआ तो कुछ नही गया। यदि स्वास्थ्य गया तो कुछ क्षति अवश्य हुई और यदि चारित्र गया तो सर्वस्व चला गया।

### अनुभव बाधित प्रतिपादन

अनेकान्त दृष्टि से विमुख अध्यात्मवादी की विकट स्थिति होती है। निश्चय दृष्टि से लोक व्यवस्था मे बडी मुसीबत आ जायगी। अभी व्यवहार

दृष्टि से "घी का घडा लाओ" कहने पर मगाने वाले का ध्येय घी प्राप्ति का सिद्ध हो जाता है, कारण उसे सुनकर घी सहित घडा लाया जाता है। निश्चय दृष्टि वाला सोचता है, घडा मिट्टी का है, मिट्टी अपने स्वरूप मे रहने से मिट्टी मिट्टी में है। घी भी घी मे है। एक वस्तु दूसरे मे नही रहती तब क्या कहकर वह अपना मनोभाव स्पष्ट करेगा ? घी तो घी मे है। घडा घडे मे है। घी घडे मे नही है। घडा घी मे नही है। तब घडा लौटा देने पर घी क्यो भूतल पर गिर जाता है ? इस उलझन से बचने के लिए जैन धर्म के विश्वमान्य स्याद्वाद सिद्धात का शरण लेना हितकारी होगा। किसी दृष्टि से घी और घडा भिन्न है और कथचित् अर्थात् दूसरी दृष्टि से घी और घडे मे आधार आधेयभाव है। इससे घी का घडा कहना सर्वथा मिथ्या नही है। आर्षवाणी है कि स्याद्वाद का शरण किये बिना जीवन यात्रा असम्भव हो जाती है।

## असामाजिक उपदेश

प्रत्येक कार्य मे विवेक की परम आवश्यकता पडती है। भूखे व्यक्ति को भोजन चाहिए, प्यासे को पानी चाहिये। प्यासे को भोजन देना और भूखे को पानी देना समझदारी का काम नही है। वर्तमान भौतिकवादी युग मे मानव समाज आत्मा परमात्मा को कुछ नही समझता। जनता प्राय रूप और रुपैया का गुलाम हो पाशविक वृत्तियो की पूर्ति मे लगी रहती है। हिंसा, झूठ चोरी, कुशील तथा अतिलोभ के कुचक्र मे फसा मानव अपार कष्ट पा रहा है। उसके लिए सदाचरण की सजीविनी चाहिए। फूटे बर्तन मे रखा दूध बह जाता है, उसी प्रकार अध्यात्म की शिक्षा विषयासक्त चरित्रहीन व्यक्तियो को तनिक भी लाभ नही पहुचा पाती है।

अध्यात्म विद्या रूप औषधि का अनुपान पवित्र तथा उज्ज्वल जीवन है। विषय रूप विषपान करने वाले व्यक्ति अध्यात्म की शक्तिप्रद औषध से लाभ नही ले पाते हैं। सोनगढ पथी प्रचार बहुत वर्षों से चल रहा है। उस पथ मे नैतिक जीवन के मूल्याकन की ओर ध्यान नही दिया जाता है। किसी डाक्टर या वैद्य की दवा वर्षों से सेवन करने के बाद भी शरीर मे शक्ति नही आती है, तो बीमार का कर्तव्य हो जाता है, कि वह वैद्यराज से रोग के अनुसार इलाज करने को कहे। जैनधर्म के आदर्श सिद्धातो को भूल कर जैन लोग रात्रि भोजन, मद्यपान, मासाहार, कुशील, असत्य, छल-कपट

के कार्यों मे प्रवृत्ति कर रहे है। उन्हे सयम की जल्दी दवा न देकर समयसार का रसायन खिलाया जाता है, जिसे हजम करने के लिए महाव्रतों का सयोग-युक्त जीवन चाहिये। फलत जीवन मे तनिक भी विकास न होकर स्वविनाश तथा परविनाश की ओर प्रमादी लोग लगते है। आत्मा के स्वरूप को समझना तथा बहिरात्म भाव का त्याग करना खेल नही है। विषय भोगों का गुलाम अध्यात्म दृष्टि का स्वाद क्या जाने। जीव को गुलाम बनाने वाले मोहनीय कर्म की अद्भुत शक्ति है। आचार्य शातिसागर महाराज ने कहा था, "मोहनीय कर्म दर्शन मोहनीय, चरित्र मोहनीय के भेद मे दो प्रकार का है। दर्शन मोहनीय के विनाशार्थ आत्मस्वरूप का चितन करना चाहिए। चारित्र मोहनीय के क्षय के लिए सयम धारण करना चाहिए।"

आत्म वचना– जो यह कहते है, "हम व्रतादि पालन करने मे असमर्थ है", यथार्थ मे वे अपनी आत्मा को धोखा देते है। उन्हे यदि डाक्टर आदेश देता है कि तुम्हे अपने प्राणो को बचाना है तो शक्कर, घी आदि मधुर पदार्थों को त्यागकर मूग की दाल का पानी मात्र लेना होगा, तो हमारा अध्यात्मवादी शेर डाक्टर की आज्ञा को शिरोधार्य करके निर्दोष रूप से उस आदेश को पालने का पूरा प्रयत्न करता है। वहा वह यह नही कहता है कि त्याग अपने आप आ जायगा, या जब मेरी सयम पर्याय सीमधर भगवान के ज्ञान मे झलकी है, तब त्याग का पालन होगा। वह अपनी इच्छा शक्ति (Will power) को दृढ करके सकल्प करता है, तदनुसार आचरण करता है। इसी प्रकार यदि वह जिनेन्द्र भगवान रूप आत्मा के डाक्टर की सयम रूपी औषधि को श्रद्धा सहित ले, तो ससार की समस्त बाधाएँ दूर होगी और शीघ्र ही कुछ भव मे वह भव्य जीव मोक्ष को प्राप्त करेगा।

सरल पद्धति—जैन धर्म मे सयम की औषधि इस प्रकार दी जाती है कि अशक्त व्यक्ति भी स्वहित सपादन कर सकता है। एक उपयोगी कथा है। एक मातग खूब शराब पीता था तथा मास खाता था। उसे एक दिगम्बर जैन मुनि ने हिंसा कार्य त्यागने का उपदेश दिया। वह उसके हृदय मे नही जमी। कुशल साधुराज ने कहा—"भाई! इस समय तू चमडे की रस्सी बना रहा है, जब तक तेरी रस्सी बटने का काम चल रहा है, तब तक के लिए तू मास छोड दे। उस मातग ने सोचा अभी मुझे कुछ खाना नही है, इससे साधु बाबा की बात को उसने मान लिया। कुछ समय के बाद उसकी मृत्यु हो

गई। व्रत धारण करने के कारण वह चाण्डाल होते हुए भी स्वर्ग मे देव हुआ।

वर्तमान देश, काल की स्थिति को देखते हुए लोगों को उच्चनैतिक जीवन व्यतीत करने का उपदेश आवश्यक तथा हितकारी है। सदाचारी जीवन के साथ आध्यात्मिक दृष्टि की घनिष्ट मैत्री है।

स्मरणीय—यह बात एकान्तवादियों को स्मरण रखना चाहिए कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति मनुष्यगति के सिवाय अन्य गतियो मे भी हो सकती है किन्तु सयम धारण करने की पात्रता मनुष्य शरीर मे ही है। कवि का प्रश्न मार्मिक है —

काय पायकर तप नहि कीना, आगम पढ नहि मिटी कषाय।
धनको जोड दान नहि दीना, कौन काम कीना ते आय ?
लीना जनम मरण के कारण, रतन अमोलक दिया गमाय।
ऐसा अवसर फेर कठिन है, शास्त्र ज्ञान अरु नर परजाय।

यह बात ज्ञातव्य है कि आत्मतत्त्व के सम्बन्ध मे बौद्धिक विकास होते हुए भी यदि तुम्हारा जीवन विषय वासना मे मलिन है, तो तुम्हारा पतन अवश्यभावी है। सात्यकि पुत्र का उदाहरण देते हुए महर्षि कुन्दकुन्द शील पाहुड मे कहते है, दश पूर्व पर्यन्त महान ज्ञानयोगी सात्यकिपुत्र क्यो नरक गया ? उनका महान ज्ञान उनके नरक का पतन निरोधक नही हो पाया। इस प्रसग मे सोमदेव सूरि का मार्ग दर्शन उपयोगी है। उनके प्रकाश मे यदि कार्य हो तो हमारा सच्चा कल्याण होगा। उन्होने कहा है :—

वैराग्य भावना नित्य नित्य तत्त्वानुचिंतनम्।
नित्य यत्नश्च कर्त्तव्यो यमेषु नियमेषु च ॥

सदा ससार तथा भोगो मे उदासीन भाव रखो। सदा वस्तु स्वरूप का विचार करते रहो। सदा यम और नियमो के पालनार्थ प्रयत्न करते रहो।

## मूल रचनाओ मे मिलावट—

हिन्दू शास्त्रो मे तथा जैन ग्रन्थो मे राजा वसु का कथानक आता है। जैन शास्त्र से ज्ञात होता है, कि राजा वसु का व्यक्तिगत जीवन स्वच्छ था। तब फिर वह मरकर नरक क्यो गया ? उसने बहुत बड़ा पाप क्या किया था

[illegible]

देहासक्त अध्यात्मवाद—[illegible] है, जो शरीर की आत्मा से भिन्नता की [illegible] बातें करता है, [illegible] परलोक की चर्चा करता है। किन्तु ऐसा काम करने से डरता है, जिससे शरीर की मुटाई कम हो जाय या मधुर तथा इन्द्रियों का पोषण प्रदान करने वाले पदार्थों की प्राप्ति रुक जाय। बातें आत्मा की रहती हैं किन्तु [illegible] पथ सदृश आचरण रहता है। आत्माराम की आराधना और विषयभोग इन दोनों में विरोध है। तुलसीदास जी की उक्ति महत्वपूर्ण है—

जहाँ राम तह् काम नहिं जहा काम नहि राम।
तुलसी दोऊ न रहे रवि रजनी इक ठाम॥

इस संदर्भ मे पूज्यपाद महर्षि की वाणी बहुत अर्थपूर्ण है—

यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकम्॥इष्टोपदेश

जिस सामग्री से चैतन्यमय आत्मा का हित होता है, उससे जड शरीर का हित नही होगा। जो सामग्री शरीर के लिए हितकारी है, उससे जीव का हित नही होगा।

कषाय को कृष करना मुंह से कह देना सरल बात है। कषाय तथा राग द्वेष की निवृत्ति के लिए बाहरी वस्तुओ का त्याग जरूरी है। धान्य का

बाहरी छिलका पहिले अलग किया जाता है, उसके पश्चात् तदुल की भीतरी मलिनता दूर करते हैं। परिग्रह आदि सामग्री को सर्व प्रथम दूर करना चाहिये। सर्वज्ञ तीर्थंकर महावीर ने आत्मा को निर्विकार बनाकर आनन्द की अनुभूति के लिए सर्व प्रथम दिगम्बर मुद्रा की स्वीकृति को आवश्यक माना है। प्रवचनसार मे कहा है,—"पडिवज्जदु सामण्ण जदि इच्छदि दुक्खपरिमोक्ख।"

बाह्य त्याग का कारण—

यदि पूर्ण रूप से दु:ख का अभाव करना चाहते हो तो दिगम्बर श्रमण अवस्था को प्राप्त करो। अमृतचन्द्र सूरि ने समयसार की इस गाथा "वत्थु पडुच्च अज्झवसाण होइ" ( २६५ ) की टीका मे कहा है 'किमर्थं बाह्य वस्तु प्रतिषेध ?" बाह्य वस्तु का निषेध क्यो किया जाता है ? उत्तर मे वे लिखते हैं—"अध्यवसानस्य हि बाह्य वस्तु आश्रयभूत निराश्रय नास्त्य-ध्यवसान मिति"—रागादि अध्यवसानो का बाह्य पदार्थ आश्रयरूप है, बिना आश्रय के अध्यवसान नही होते। द्यानतराय की दशलक्षण पूजा के ये शब्द महत्वपूर्ण है—

उत्तम आकिंचन गुण जानो। परिगह चिन्ता दु:ख ही मानो।
फॉस तनकसी तन मे साले, चाह लगोटी की दु:ख [illegible]
भाले न समता सुख कभी, नर बिना मुनि मुद्रा [illegible]
धनि नगन पर तन नगन ठाड़े, सुर असुर पा[illegible]

धन लिप्सा—

अपनी आवश्यकताओं को कम करते हुए [illegible] तथा दूसरे का कल्याण करता है। एकान्तवादि[illegible] [illegible] है। अत्याचार, शोषण, दम आदि द्वारा [illegible] छाया मे वह नर्तन कर [illegible] रहा है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] किया जाता है और [illegible] [illegible] स्थान लिया जाता है, जो [illegible]

मे प्रवीण हैं। इन लोगों को सोनगढ की विचार पद्धति अनुकूल पड जाती है। आत्मा पाप करते हुए भी कष्ट नही प्राप्त करेगा, क्योकि उस पथ मे आत्मा को कर्त्ता न मानकर शुद्ध ज्ञान स्वरूप ज्ञाता कहा है।

**मार्मिक बात**—स्वामी सत्य-भक्त जी ने "कानजी चर्चा" पुस्तक मे विचार पूर्ण सामग्री दी है। वे लिखते हैं, "अपराधी भी निरपराध है, क्योकि अपराध का कर्तृत्व उसमे नही है। वह तो निमित्तमात्र होने मे सिर्फ उपस्थित रहता है। असली कर्तृत्व तो उपादान मे है। हत्यारा तो निमित्त हैं, उसकी कोई जिम्मेदारी नही है। जिम्मेदारी तो उसकी है, जो मारा गया है क्योकि वह उपादान है इसलिये जितने धनवान हैं और जिनने लूट खसोट करके धन इकट्ठा किया है, वे अपने को निरपराध होने का फतवा मिलने के कारण बडे-बडे धनवान उनके हुकम से और उनके लिये भी लाखो खर्च करते हैं। और जब कोई आदमी जन-धन से प्रतिष्ठित हो, तो कोई भी शासक उनके गीत गाने को तैयार हो जाता है और जनता भी बिना समझे उनका जय जयकार करने लगती है। इस प्रकार यह पाप की परम्परा और विस्तार बढता ही जाता है।"

ये वैभव का प्रदर्शन करने वाले भाई वर्तमान विश्व की परिस्थिति और राजनैतिक दशा पर दृष्टि नही देते है। ये यह बात नही सोचते कि आज सारे ससार मे पूजीवादी वर्ग के प्रति जनता क्या सोचती है।

**चेतावनी**—इन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि समाजवादी शासन की प्रचण्ड पवन के प्रहार से पूजीवादी वृक्ष शीघ्र धराशायी हो जायगा। छल, कपट करके धन सचय करने वाले धनिको तथा पूजीपतियो की पकडे जाने पर जो दुर्दशा होती है, वह अत्यन्त दयनीय है। शासन के न्यायालय द्वारा दण्डित होने पर बडे २ धनिको को व्यथित देखकर एक कवि अन्योक्ति द्वारा कहता है—

मक्खी बैठी शहद पर पख लिए लिपटाय।
हाथ मले अरु सिर धुनै लालच बुरी बलाय।

द्यानतराय जी की पूजा के ये शब्द मार्मिक है—

नहि लहै लछमी अधिक छलकर करम बध विशेषता।
भय त्याग दूध बिलाव पीवे आपदा नहि देखता।

**अशरण शरण्य—**

इस भारत क्षेत्र में इस समय केवली भगवान का अभाव हो गया है। आत्म कल्याण हेतु किसका शरण ग्रहण किया जाय ? इस काल विषय में पद्मनंदि पचविंशति का यह स्थल महत्वपूर्ण है। वे कहते हैं, इस कलिकाल में केवली भगवान के स्थान में उनकी वाणी तथा मुनीश्वरों का शरण ग्रहण कर भव्यात्मा अपना कल्याण कर सकता है —

> सम्प्रत्यस्ति न केवली किल कलौ त्रैलोक्य चूडामणि. ।
> तद्वाचः परमासतेऽत्र भरतक्षेत्रे जगद्द्योतिका ॥
> सद् रत्नत्रयधारिणो यतिवरा स्तेषां समालंबनं ।
> तत्पूजा जिनवाचिपूजनमतः साक्षाज्जिनः पूजितः ॥

यद्यपि इस कलि काल के समय में त्रैलोक्य के चूडामणि केवली भगवान नहीं हैं, तो भी इस भरत क्षेत्र में समस्त जगत् को प्रकाशित करने वाली उनकी वाणी विद्यमान है तथा श्रेष्ठ रत्नत्रय को धारण करने वाले मुनिगण हैं। उनका आश्रय ग्रहण करें। उनकी पूजा तथा जिनवाणी की पूजा करने से साक्षात् जिनेन्द्र की पूजा की गई ऐसा समझना चाहिए।

जिनेन्द्र भगवान की वाणी में आत्मा को विशुद्ध बनाने वाली सर्व प्रकार की सामग्री विद्यमान है। उस जिनवाणी की देशना के अनुसार अपना जीवन निर्माण करने वाले यथाजात रूपधारी मुनीश्वर हैं। इन दोनों का शरण ग्रहण करने वाला भव्य साक्षात् जिनेन्द्र के शरण में रहने वाले जीव के समान आत्म हित सम्पादन कर सकता है।

णमोकार मंत्र माहात्म्य स्तोत्र में उमा स्वामी आचार्य ने कहा है —

> जन्मुर्जिना स्तदपवर्गपदं तदैव
> विश्वं वराकमिदमत्र कथं विनाऽस्मात्
> तत्सर्वलोक भुवनोद्धरणाय धीरै—
> र्मंत्रात्मकं निजवपुर्निहितं तदत्र ॥

जिनेन्द्र भगवान मोक्ष चले गए। उनके [illegible] की क्या स्थिति होती, इस [illegible]

धीरात्माओ ने पच नमस्कार मन्त्र [illegible] किया है। अनेक भव्य जीव पच नमस्कार मन्त्र द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकते है। णमोकार महामन्त्र को "जिनगुणजनन [illegible]" मोक्ष सुख का हेतु तथा केवल ज्ञानजनक मत्र कहा है। इसके द्वारा सम्पूर्ण पापो का नाश होता है। जिन बिम्ब, जिनवाणी, दिगम्बर जैन मुनिराज तथा पच परमेष्ठी की आराधना द्वारा यह जीव पचमकाल रूप सकट कालीन स्थिति से सकुशल निकलकर आगामी भवो मे निर्वाण लाभ कर सकेगा। ये ही अशरण के शरण है।

**महामत्र की विशेषताएँ**— यह महामत्र जिन शासन की अनमोल निधि है। सूक्ष्मता से विचार करने पर पच नमस्कार मत्र मे एकान्तवादी प्रवाद को दूर करने वाली अनेक बात दृष्टिगोचर होती है।

( १ ) इस महामत्र मे सभी सयमी आत्माओ को नमस्कार किया गया है। असयमी का स्थान नमस्कार मत्र मे नही है। अतः असयमी की वदना का निषेध स्पष्ट होता है।

( २ ) सयमियो को प्रणाम स्वरूप इस महामत्र को अपराजित मत्र कहा है। कहा भी है—

> अपराजित मत्रोय सर्व विघ्नविनाशन. ।
> मगलेषु च सर्वेषु प्रथम मगल मत. ॥

इससे सयम की अपूर्व सामर्थ्य का परिज्ञान होता है। जब सयमियो का नाम उच्चारण तथा उनका स्मरण पाप क्षयकारी है, विपत्ति निवारक है तथा अपूर्व सिद्धियो का प्रदाता है, तब अपने आचरण द्वारा सयम परिपालन की महिमा कल्पनातीत सिद्ध होती है। सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान की पूर्णता होते हुए भी जब तक सयम ( सम्यक्चारित्र ) का सहयोग नही मिलता है, तब तक मोक्ष नही प्राप्त होता है।

( ३ ) निश्चय नय से सभी सिद्ध माने गए है, व्यवहार नय की अपेक्षा जो दूसरी दृष्टि है उसे यह महामत्र स्पष्ट करता है। सिद्ध परमेष्ठी रूप पर्याय परिणत अशरीरी परमात्मा के सिवाय अरहत आचार्य उपाध्याय तथा साधु रूप परमेष्ठी असिद्ध अवस्था युक्त है, इस प्रकार व्यवहार दृष्टि भी सत्य सिद्ध हो जाती है।

( ४ ) इन महामंत्र में पंचविध पूज्य आत्माओं को नमस्कार किया गया है, अतः पूज्य पूजक रूप द्वैत दृष्टि की उपयोगिता स्पष्ट होती है। यहां व्यवहार नय प्रतिपादित भेद दृष्टि को मान्यता प्रदान की गई है। निश्चय नय समर्थित अद्वैत दृष्टि गौण हो गई है।

( ५ ) इस मंत्रराज के द्वारा यह बात स्पष्ट होती है, कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कथंचित् उपकार करता है। अरहंत भगवान ने चार घातिया कर्मों का नाश किया है, उन्हें सर्व प्रथम नमस्कार किया गया तथा संपूर्ण कर्मराशि का नाश करने वाले सिद्ध भगवान को उनके बाद प्रणाम किया गया है, क्योंकि अरहंत भगवान दिव्यध्वनि द्वारा त्रिभुवन के लिए हितकारी देशना देते हैं। "तिहुवण हिद-मधुर-विसद-वक्काण"— त्रिभुवन को हितकारी, मधुर तथा स्पष्ट वाणी वाले जिनेन्द्रों को कुंदकुंद ऋषिराज ने पंचास्तिकाय में प्रणाम किया है। अरहंत भगवान की दिव्यवाणी के द्वारा ही तो रूप, रस, गंध, स्पर्श रहित सिद्ध परमात्मा का परिज्ञान प्राप्त होता है। अरहंत भगवान चैतन्य द्रव्य द्वारा दूसरों का हित होता है, यह स्याद्वाद पक्ष इनसे पुष्ट होता है।

( ६ ) यह महामंत्र पदस्थ ध्यान नामक शुभभावरूप धर्मध्यान का अंग है। अतः मोक्षमार्ग में शुभभाव का भी महत्व है, यह सिद्ध होता है।

## आत्मोपलब्धि की कठिनता—

आत्मा की बातें बनाना सरल है। उसकी उपलब्धि अत्यन्त कठिन है। एक बार जर्मन दार्शनिक कान्ट घूमने गये थे। रास्ते में एक व्यक्ति को उनकी छड़ी से आघात पहुंचा। उस भद्र व्यक्ति ने कान्ट से पूछा, "Who are you ?" आप कौन हैं? कांट ने कहा "भाई, मैं अब तक नहीं अनुभव कर पाया हूँ, कि "मैं" कौन हूं ? यदि मैं विश्व के राज्य का अधिपति होता, तो मैं आधा राज्य तुमको दे देता, यदि तुम मुझे बता दो कि 'मैं" कौन हूँ। [illegible] आत्मा [illegible] नहीं है। "ज्ञाता दृष्टा आतमराम, हूँ [illegible] निरंजन निष्काम" इतना गीत गाने मात्र से इष्ट सिद्धि होना असंभव है। जो आत्मा रूप, रस, गंध, स्पर्श रहित

है, इन्द्रिय ज्ञान के अगोचर है, उसका ज्ञान बाहरी सामग्री पर कैसे आश्रित माना जाय ? यह कथन सत्य है :—

परख सकती नही रत्नो को हर इन्सान की आंखें ।
दिखाई ब्रह्म क्या देवे, जो न हो ज्ञान की आंखें ।

ब्रह्म दर्शन और आत्म ज्ञान की बातें ढोंगी लोग बहुत करते हैं। यद्यपि उनका आचरण बगले के समान रहा आता है। गांधी जी के जीवन को प्रकाश दाता, महान ज्ञानी सत्पुरुष श्रीमद् राजचद भाई ने लिखा था, "वर्तमान दुषम काल रहता है। मनुष्य का मन भी दुषम देखने में आता है। प्राय. करके परमार्थ से शुष्क अन्तकरण वाले परमार्थ का दिखावा करके स्वेच्छा से आचरण करते है।" (पृष्ठ ८०० राजचद्र ग्रन्थ)

मार्मिक दृष्टान्त—

महाकवि बनारसीदास जी ने 'अर्ध कथानक' नाम के छन्दोबद्ध आत्म चरित्र मे लिखा है, कि जैन धर्म का व्यवस्थित परिज्ञान न होने से केवल समयसार नाम के अध्यात्म शास्त्र का अभ्यास करके उनकी बुद्धि का विपरीत परिणमन हो गया था। जब उन्होंने गोम्मट सार ग्रन्थ का व्यवस्थित अभ्यास किया तब उनको सच्चा प्रकाश प्राप्त हुआ। उनकी दृष्टि एकान्त पक्ष छोड अनेकान्तवादी बन गई। अर्ध कथानक मे उन्होंने कहा है।

उन्होंने अपने मित्र नरोत्तम के साथ णमोकार की एक जाप का नियम किया था। व्रत भग होने पर घी त्याग करने की प्रतिज्ञा की थी। चौदस को उपवास करना, पचास हरी सेवन, पूजन करना ये भी नियम लिए थे। उनके शब्द हैं।

नोकारवाली एक जाप नित कीजिए।
दोष लगे परभात तौ धीउ न लीजिये ॥ ४३५ ॥
मारग वरत यथासकति सब चौदस उपवास।
साखी कीन्हे पास जिन राखी हरी पचास ॥ ४३६ ॥

अरथमल ढोर की सगति से उन्होंने समयसार की राजमल्ल की टीका पढी। पढकर कविवर की बुद्धि मे विकार उत्पन्न हुआ।

तब बनारसि बाचै नित्त भाषा अरथ विचारै चित्त ।
पावै नहीं अध्यातम पेंच, मानै बाहिज किरिया हेच ॥ ५९४॥

कुबुद्धि के अधीन हो उन्होंने सब व्रतादि त्याग दिये। वे मन्दिर का द्रव्य खाने लगे थे। जिन प्रतिमाजी की निन्दा करने लगे थे। उन्होंने स्वयं अपने पतन का इस प्रकार चित्रण किया है।

देव चढाया नेवज खाहि ॥ ६००

जिन प्रतिमा निंदहि मन माहि। मुखसो कहहिं जो कहनी नाहिं।
खाहिं रात दिन पशु की भांति। रहे एकत मृषामद माति। ६१२॥

इस प्रकार पतित जीवन उनका करीब बीस वर्ष पर्यन्त रहा। एक समय पं० रूपचद जी पांडे का आगरे में आगमन हुआ। उनसे कविवर ने गोम्मट सार शास्त्र पढ़ा। वे कहते हैं—

अनायास इस ही समय नगर आगरे थान।
रूपचन्द पांड गुनी आयो आगम जान ॥ ६३० ॥

सब अध्यातमी कियो विचार, ग्रंथ बचायो गोमटसार ॥६३१॥
तामें गुनथानक परवान, कह्यो ज्ञान अरु क्रिया विधान।
जो जिय जिस गुन थानक होय, तैसी क्रिया करै सब कोय ॥६३२॥
भिन्न भिन्न विवरण विस्तार, अन्तर नियत बहुरि विवहार।
सबकी कथा सबै विधि कही सुनि के संसै कछु न रही ॥ ६३२
तब बनारसी औरे भयो स्यादवाद परनति परिनयो।
पांडे रूपचन्द गुरु पास सुन्यो ग्रंथ मन भयो हुलास ॥६३४॥
सुनि सुनि रूपचन्द के बैन बनारसी भयो दिढ जैन ॥ ६३५ ॥

तब फिर और कवीसुरी करी अध्यातम माहि।
यह वह रचना एक सो [illegible] माहि । ६३६

कवि को १६७१ सवत् मे समयसार के अभ्यास से भ्रम उत्पन्न हुआ था, जो सवत १६६२ मे दूर हुआ और कविवर को सच्चा स्याद्वाद मार्ग प्राप्त हुआ। खेद है कि सोनगढी वर्ग अब तक भी एकान्तवाद की भवर मे घूम रहा है। हमे मनुष्य जन्म की दुर्लभता, क्षणिकता को नही भुलाना चाहिये।

भ्रान्त-दृष्टि—

हिन्दू सन्यासी श्री रामकृष्ण परमहस के जीवन चरित्र मे एक उपयोगी कथन आया है। उनका प्रिय शिष्य काली बाबू वेदान्त का अच्छा ज्ञाता था। वह रोज मछली मारा करता था। एक दिन रामकृष्ण स्वामी ने उससे कहा—'तुम ऐसा क्रूर काम क्यो करते हो?' काली बाबू ने कहा था—"Atman is immortal so I do not really kill the fishes" आत्मा का नाश नही होता, इससे मैं वास्तव मे मछलियो को नही मारता हूँ। इस पर परमहस स्वामी ने कहा था, "अरे! तू अपनी आत्मा को धोखा देता है। आत्मदर्शन प्राप्त व्यक्ति दूसरे के प्रति क्रूरता नही धारण करता है। वह दूसरे के प्राण लेने की बात अपने चित्त मे कभी नही लायेगा। (रोम्या रोला लिखित रामकृष्ण परमहस का जीवन चरित्र)

प्रथम अवस्था मे अनियत्रित अध्यात्मवाद प्राय. बुरी तरह पतन कराता है। वह अधूरा ज्ञान भ्रम पैदा करता है। मास सेवन, मदिरापान, पर स्त्री सेवन आदि कुकर्म करते हुए वह अध्यात्मवादी सोचता है, मेरा आत्मा शुद्ध है, बुद्ध है, प्रबुद्ध है। बाहरी आचरण का सम्बन्ध शरीर से है। आत्मा से नही। इस प्रकार वह व्यक्ति कुपथगामी बन जाता है। उसकी दृष्टि मे नैतिकता का कोई मूल्य नही रहता है।

असत्याग्रही मनोवृत्ति—

सच्चा सोना परीक्षा रूप अग्नि से नही घबडाता है। खोटा सोना बेचने वाला अपने सुवर्ण की अग्नि परीक्षा से डरता है। "साच को आच का क्या भय', यह कहावत विख्यात है। सत्यप्रेमी विनम्र व्यक्ति तत्त्व चर्चा से दूर नही भागता। वह तत्त्व चर्चा का सदा स्वागत करता है। वह कहता है मेरा सत्य नही, जो सत्य है वह मेरा है।

चर्चा मे भय क्यो ?—सोनगढ़ पंथी तत्त्व चर्चा से भय खाते हैं। कहते हैं हम विवाद, चर्चा नहीं करना चाहते। वे अपनी धारणा मे संशोधन को तनिक भी तैयार नहीं है। यह उनकी नैतिक तथा बौद्धिक दुर्बलता को बताता है। ज्ञान के अहंकार को भी सूचित करता है। ऐसी हठी मनोवृत्ति के विषय मे धर्म परीक्षा मे एक कथा आई है।

एक राजा की एक ही संतान थी। दुर्भाग्य से वह राजपुत्र जन्म से अंधा था। राजा का उस पर बड़ा प्रेम था। बड़ा होने पर वह राजकुमार अपने बहुमूल्य आभूषणो को दान मे दे दिया करता था। वह जिद्दी स्वभाव का था, इसलिये उसे समझाना अत्यन्त कठिन समस्या थी। चतुर मंत्रियो की सलाह से अंधे राजकुमार को लोहे के आभूषण पहिनाए गए। मंत्रियो ने राजकुमार को कह दिया था कि यदि कोई तुम्हारे आभूषणो को लोहे का कहे, तो पास मे रखे लोह दंड से उसे दंडित करना। अत. यदि कोई राजकुमार से कहता था कि तुम्हारे आभूषण लोहे के हैं, तो वह उसे पीटता था। राजकुमार विपरीत बुद्धि बन गया था। उसने लोहे के आभूषणो को सोने के आभूषण समझ लिये थे। वह दूसरो की नहीं सुनता था।

इस प्रकार की विचित्र आदत एकांतवादी वर्ग मे दिखाई देती है। उनसे कहा जाता है कि तुम्हारे गुरुजी पंच अणुव्रत धारण, सप्तव्यसन त्याग आदि से भी अपने को समलंकृत नहीं मानते हैं तथा स्वयं को अव्रती कहते हैं। उन्हें सोनगढ़ के लोग स्वामी, सद्‌गुरुदेव कहते है। जब उनको आचार्य कुन्दकुन्द की यह आज्ञा सुनाई जाती है, "असंजद ण वंदे", तब भी उनमे सत्य का आदर कर अपनी आदत को बदलने का विचार भी उत्पन्न नहीं होता।

इस सम्बन्ध मे महात्मा गांधी की दृष्टि बड़ी सुलझी हुई थी। उन्होंने यह महत्वपूर्ण बात लिखी थी, "जब तक मनुष्य अपने आपको सबसे छोटा नहीं मानता है, तब तक मुक्ति उससे दूर रहती है। भूल होना मनुष्य का स्वभाव है। की गई भूल को मान लेना और इस तरह आचरण करना कि जिससे वह भूल फिर न होने पावे यह मर्दानगी है।"

यह खेद की बात है, कि एकान्तवादी वर्ग भूल को मानने को तथा उसे सुधारने को तैयार नहीं है। इनकी सभा साधारण पाक्षिक श्रावक की

श्रेणी मे आते है। उन्हे 'स्वामी' कहना या मानना प्रवेशिका कक्षा के विद्यार्थी को श्रेष्ठ विद्वान कहने सदृश अनुचित बात है। इस प्रसग मे गांधीजी का आदर्श सत्य प्रेमियो के लिये ज्ञानवर्द्धक है। गांधी जी ने अपने को महात्मा कहे जाने पर तीव्र विरोध करते थे। उन्होंने लिखा था—"जब कोई इस बात का आग्रह करता है कि मेरे लिये 'महात्मा' शब्द का ही प्रयोग किया जाय, तब तो मुझे असह्य पीडा होती है। साबरमती आश्रम मे मेरा जीवन बहता है। वहां हर एक बच्चे, स्त्री, पुरुष सबको आज्ञा है, कि वे मेरे लिए महात्मा शब्द का प्रयोग न करे। किसी पत्र मे भी मेरा उल्लेख महात्मा शब्द के द्वारा न करे। मुझे वे सिर्फ गाधी या गाधी जी कहा करें। मैं अल्प प्राणी हूँ, महाप्राणी नही हूँ।" (हिन्दी नवजीवन १९२४)

जैन महन्त—इस प्रकार नम्रता और सचाई से प्रेम का दर्शन कानजी बाबा मे नही दिखता। हम सन् १९६४ के अप्रेल मे बिहार के तीर्थों की वदना को गये थे। एक तीर्थ पर एक प्रमाणिक व्यक्ति ने हमे इस प्रकार का वृत्तान्त सुनाया था। "चार पांच वर्ष पूर्व कानजी बाबा ने हमारे यहाँ आकर आहार ग्रहण किया था। उन्होने कहा मैं नही व्रती नही हूँ। मुझ पर दबाव डाला गया कि तुम इनके पैर धोकर उस पानी को मस्तक पर लगाओ। मैंने कहा था—"मैं व्रती हूँ, इसलिए ऐसा नही कर सकता। उस स्थिति मे सघ की एक महिला ने उनके पैर पानी मे धोएँ और उस धोवन को आँखो मे लगाया।" उन विहार मे विद्यमान भाई ने यह बताया कि "कानजी श्वेताम्बर साधु सदृश वस्त्र पहने थे। उनके हाथ मे एक रुमाल रहता है, उसमे वे एक लकडी छुपाकर रखते हैं।" यह बात रहस्यपूर्ण है। वास्तव मे पहले वे ढूंढिया पथी गुरू थे। उस वेश को उन्होने नही छोडा है। हाँ, उस साधु जीवन मे लिए गये सयम को उन्होने छोड दिया है। उन्हे ठाठ-बाट से सुसज्जित देखकर स्वर्गीय तख्तमल जी जैन मुख्यमत्री मध्यभारत ने कहा था कि "वे जैन महत जैसे लगते है।" विचारशील व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह सत्पथ को न भूले। सत्य का शरण ग्रहण करने मे ही आत्मा का हित है।

**प्रभाव का कारण—**

यहाँ यह प्रश्न उठता है, कि अन्य सप्रदाय वाले व्यक्ति ने दिगम्बर जैन समाज मे घुसकर अपने लिये विशेष स्थान कैसे बना लिया और उनके

चरणों की पूजा तक करने वाले अनेक भक्त दिगम्बर भाई वहिन क्यों हो गये ?

इस प्रश्न का उत्तर सरल है। जगल की एक लकडी ने लोहे की कुल्हाड़ी का साथ दिया। इससे सारा जगल काट दिया गया। इसी प्रकार कहते हैं, समाज के कुछ पैसे के लालची पडितो ने अच्छी रकम पाकर भ त्री धार्मिक समाज मे अपने परिचय और प्रभाव का उपयोग ताजी पथ के प्रचार मे लगा दिया। कोई-कोई अवसरवादी यश आदि के स्वार्थ वश राम के पास जाकर 'रामाय स्वस्ति' पढते हैं और रावण के पास जाकर 'रावणाय स्वस्ति' भी पढा करते हैं। ऐसे गोमुख-व्याघ्र वृत्ति वाले कपटी जीवन युक्त अनेक व्यक्तियो ने समाज को चक्कर मे डाल दिया है। भोली समाज जब निकट से इन अध्यात्मवादियो की प्रवृत्ति को देखती है तब उसके मन में ग्लानि पैदा होती है। उस समय हमारे बिके हुए माननीय पडितराज आगे आकर उनके मन को विपरीत दिशा मे मोड दिया करते हैं। अर्थ के द्वारा अनर्थ हुआ तथा हो रहा है। ईसाइयो के समान एकान्तवादी प्रचार हेतु बहुत द्रव्य लुटाते हैं। खोटी होनहार वाले लालची अपना भविष्य नही सोचते।

## कूटनीति—

एक बार गिरनार की यात्रा से लौटते हुए महर्षि आचार्य शांतिसागर महाराज कुछ घटे सोनगढ ठहरे थे। आचार्य महाराज ने हमे सुनाया था, कि श्री कानजी उनके पास आये। आचार्य श्री ने उनसे कहा था "तुमने दिगम्बर धर्म स्वीकार किया इससे हमको बडी खुशी हुई। तुमने अपने पुराने धर्म में कौन सी बुराई देखी ?" आचार्य श्री के प्रश्न का कानजी ने कोई उत्तर नहीं दिया। आचार्य श्री का यह कथानक कानजी बाबा के अन्त करण को समझने के लिये एक्सरे के समान समझना चाहिए।

एक कानजी भक्त ने हमें सुनाया, कि अफ्रिका में बहुत से सम्पन्न ढूढिया पंथी हैं। वहां कुछ कानजी पंथी प्रचारक धन सग्रह हेतु शीघ्र जाने वाले हैं। इस धन राशि का उपयोग एकातवाद के प्रचार में किया जायेगा। कानजी पंथी द्रव्य दृष्टि की चर्चा करते हैं। यथार्थ में उनका ध्यान आत्म द्रव्य के बदले रुपया रूप पुद्गल द्रव्य की ओर विशेष रहता है।

चैतन्य निधि का सच्चा प्रेमी पुद्गल का वैभव दिखाने के कुचक्र में नहीं फँसता है। वह तो माया के जाल से दूर रहता है।

## प्रत्यक्षदर्शी का अनुभव—

कानजी पंथ का भीतरी रूप पर्वत दूर से सुहावना लगता है—'दूरस्था भूधराः रम्याः।' सोनगढ़ में पंचकल्याणक सन् १९७४ के फरवरी मास में सम्पन्न हुआ। प्रत्यक्षदर्शी के रूप में वहाँ का चित्रण करते हुए श्री नीरज जैन (सतना) ने लिखा था—"मुमुक्षु लोग समयसार के पन्नों को लेकर हवा करते थे। समयसार को चरणों के नीचे खोलकर बैठे थे। कानजी पंथी नेता रामजी ने कहा था "शास्त्र जड है। उसका आत्मा पर प्रभाव नहीं पडता। समूह के समक्ष द्रव्यानुयोग का ही व्याख्यान करना चाहिए। ॐ नमः सिद्धाय" युक्त छपे कागज नालियों और कचराघरों में पड़े थे। जिनवाणी का जितना तिरस्कार मैंने स्वर्णपुरी में देखा, वह अन्यत्र देखने में नहीं आया। पंडित कैलाशचंद जी बनारस वालों ने कहा था—"हम हजारों उपादान एक स्वामी रूपी निमित्त से प्रभावित हो यहाँ एकत्रित हुए हैं। कुन्दकुन्द के परवर्ती आचार्य समंतभद्र अकलंक आदि ने व्रत, नियमों का क्यों उपदेश दिया, यदि ये धर्म नहीं थे? हम समस्त आचार्यों को एक कुन्दकुन्द पर बलिदान नहीं कर सकते" उस पंचकल्याणक में जात पात का भेद नहीं था। बाजार दूकानदारों की व्यवस्था न थी। इससे मुंह मांगा दाम, दूध, फल आदि का देना पडता था। कुली तांगे वालों ने पांच गुना तक पैसा वसूल किया। धन की बरसात और समय की पाबंदी ये दो सोनगढ के अतिशय थे। जन्माभिषेक पूर्ण होने के पहिले ही घडी देख स्वामी जी तथा कुछ भाई उठ बैठे थे। वे समय चक्र के अधीन थे, समय उनके अधीन न था।"

## असली रहस्य—

सोनगढी पंडित वहां की खूब स्तुति छापा करते है। असली रहस्य की बात समाज के सामने नहीं आ पाती। काशी के पंडित कैलाशचन्द्रजी ने एक पत्र कानजी मत प्रचारक बाबूभाई फतेहपुर वालों को २४-९-७० को वाराणसी से भेजा था। वह प्राईवेट किन्तु महत्वपूर्ण पत्र हिम्मत

नगर गुजरात के वकील कपिल भाई ने फोटो प्रिंट उतार कर प्रकाशित कराया था। जैन संदेश सोनगढ़ के समर्थन मे काफी लिखता रहता है। कभी २ विपक्ष में भी थोड़ा सा लिख देता है। इस पत्र से महत्वपूर्ण सामग्री विचारक वर्ग को प्राप्त होती है। पत्र मे लिखा था—"सासारिक भोगो मे लिप्त लोगो के सामने जो व्यवहार धर्म को हेय बतलाते हुए त्याज्य बतलाया जाता है, उसकी सर्वत्र चर्चा मैं सुनता आया हूँ। सोनगढ के अपरिपक्व प्रचारको के द्वारा भविष्य मे जैन धर्म के आचार पक्ष को गहरी क्षति पहुँचेगी। इस एकतानता मे परिवर्तन आवश्यक है।"

"यह भी सुना कि कोई कोई इसी बात के प्रचारक ब्रह्मचर्य का अश्लील चित्रण करते हैं। बुलन्द शहर के कैलाशचन्द्र क बारे मे इस प्रकार की विशेष चर्चा सुनी है। अत. इधर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है।"

इस पत्रांश की आलोचना करते हुए श्री कपिल भाई M.A LLB सपादक जैन शासन लिखते हैं—"सोनगढ के प्रचारक अभी अपरिपक्व हैं वे अश्लील चित्रण करते है और आर्षशास्त्रानुकूल नयविवक्षा के अनुसार उपदेश नहीं देते है—ऐसा पत्र मे प्रतिपादित किया गया है।"

## अनुभव विरुद्ध मान्यता—

मनुष्य दर्पण की सहायता लेकर अपने चेहरे की मलिनता का ज्ञान करता है और मुख को स्वच्छ करता है। इसी प्रकार व्यवहार दृष्टि की सहायता लेकर आत्मा अपने को विशुद्ध बनाने का उद्यम करता है। जिनेन्द्र भगवान की वीतराग छवि हमारे मनको वीतरागता की ओर आकर्षित करती है। उन जिनेश्वर की वाणी आत्मा को स्वभाव की ओर आने का तथा विभाव और विकारो के परित्याग का उपदेश देती है। उस वाणी के शिक्षण के अनुसार जिनेश्वर की मुद्रा को धारण कर तथा जीवन शोधक कार्य मे सलग्न मुनिराज का जीवन तथा आचरण रत्नत्रय धर्म की शिक्षा देता है। देव शास्त्र तथा गुरु यद्यपि पर पदार्थ हैं, किन्तु उनकी सहायता से जीव स्वाभिमुखता की सामग्री प्राप्त करता है। गृहस्थ तो कंचन, कामिनी, विषयभोग आदि के द्वारा निरन्तर बहिर्मुख रहता है, उसे अन्तर्मुख बनाने के लिए व्यवहार दृष्टि का शरण ग्रहण करना हितकारी

है। चार ज्ञान युक्त, ऋद्धियों के अधीश्वर गणधर देव तक जिनेश्वर का शरण लेकर व्यवहार दृष्टि की महत्ता को सूचित करते हैं। व्यवहार भेद दृष्टि को मुख्य बनाता है। व्यवहारनय से अरहन्त, सिद्ध आदि को णमोकार मन्त्र में प्रणाम किया गया है। मुनिराज सदा पंच नमस्कार मंत्र का जाप किया करते हैं। वे कायोत्सर्ग करते समय पहिले 'णमो अरहन्ताणं' तथा बाद में 'णमो सिद्धाणं' पढ़ते हैं, क्योंकि अरहन्त भगवान की दिव्यवाणी द्वारा सभी भव्यात्माओं का कल्याण होता है। यदि अरहन्त भगवान की वाणी ने भक्तों को सिद्धों का स्वरूप नहीं बताया होता, तो उन अनादि निधन परज्योति परमात्मा का कैसे परिज्ञान हो पाता? वे सिद्ध नेत्र गोचर नहीं हैं। वे लोक के अग्रभाग में सिद्ध शिला के ऊपर अवस्थित हैं। णमोकार महामन्त्र यह सूचित करता है, कि आत्मविकास में व्यवहार दृष्टि का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मों ने जीव को मनुष्य के घृणित मलमूत्र भंडाररूप शरीर में कैदी बनाया है। अध्यात्मवादी एकान्त पक्ष वाला गृहस्थ अपने को पूर्णतया शुद्ध पर्यायवाला सोचता है, किन्तु यह धारणा प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा बाधित होती है। मैं परमात्मा हूँ, मैं परमात्मा बन सकता हूँ, इन कथनों में महान अन्तर है। निगोदिया जीव वहां से निकलकर मानव पर्याय धारण करता हुआ रत्नत्रय की आराधना द्वारा सिद्ध बनता है। वह निगोद पर्याय में सिद्ध भगवान के अनन्त सुख का अनुभव नहीं करता है। वह जन्म मरण विमुक्त नहीं है। वह तो एक श्वास में अष्टादश बार जन्म मरण की वेदना भोग रहा है। उसको अनन्त सुख का अनुभव कर रहा है, ऐसा कहना महान असत्य है। कसाई पशु का वध करता है, वह पशु चिल्लाता है और अपनी अपार वेदना व्यक्त करता है। उस पशु को अनन्त सुखी मानने वाला अध्यात्मवादी जगत के बीच विक्षिप्त तथा उपहास का पात्र बनेगा।

### विवेक दृष्टि—

पदार्थों का विचार करते समय जैन धर्म के प्राणरूप स्याद्वाद सिद्धान्त को सदा अपने ध्यान में रखना सत्य प्रेमी के लिये उचित है। जल का स्वभाव शीतलता है। स्वभाव की अपेक्षा अग्नि के संपर्क से उष्णता

हुआ पानी भी शीतल कहा जायगा, किन्तु पर्याय की अपेक्षा उसे शीतल नहीं मानना होगा। द्रव्य दृष्टि या निश्चय दृष्टि से शीतल कहा जाने वाला उबलता पानी पर्याय दृष्टि से शीतल नहीं है। इस तत्त्व को भुला देने वाला एकान्तवादी यदि उस उबलते पानी में हाथ डालेगा, तो उसका हाथ जल जायगा और वह अपार दाह जनित व्यथा का अनुभव करेगा। उस समय वह यह कहना भूल जायगा, कि मैं आनन्द का अनुभव करने वाला चिदानन्द परमात्मा हूँ। इस कारण शक्ति की अपेक्षा किया गया पदार्थ का कथन और पर्याय की दृष्टि से किए गए कथन को सर्वदा समान मानना उचित नहीं है। गृहस्थ को अपने जीवन पर गहराई से विचार कर चरणानुयोग में प्रतिपादित पद्धति के अनुसार जीवन शोधन के कार्य में प्रवृत्ति करना चाहिये।

## सत्य पथ क्या है ?

एकान्तवादी अध्यात्म विद्या रूप अमृत का रस पान न कर उसमें विषय वासनाओं का पोषण करता हुआ कर्म बन्धन को और जटिल बनाता है। प्रमादी व्यक्ति की दृष्टि का भैया भगवतीदास जी ने इस प्रकार चित्रण किया है—

आलस कहै उद्यम जिन ठानो, सोवहु सदन पिछोरी तान।
काहे रैन दिना शठ धावत, लिख्यो ललाट मिलै सोई आन।।
आवत जात मरे जिम केतक ऐसे ही भेद हिए पहिचान।
यातैं इकन्त गहो उर अन्तर सीख यहै धरिये सुख मान।।

अनेकान्त विद्या से प्रकाशित हृदयवाला पुरुषार्थ का प्रतिनिधित्व करता हुआ इस प्रकार मार्मिक उत्तर देता है।

उद्यम कहै अरे शठ आलस तू सरवर क्यों करे हमारि।
हम मिथ्यात तजै गहे सम्यक जो निजरूप महा हितकार।।
श्रावक धर्म इकादश भेद सों श्री मुनि पंथ महाव्रत धारि।
चढ़ि गुणथान विलोक ज्ञेय सब, त्यागहिं कर्म वरैं शिवनारि।।

## आध्यात्मिकता की भूमि वैभव की क्रीड़ा स्थली ?

जिन पुण्य पुरुषों की आत्मा अध्यात्म विद्या के प्रकाश से देदीप्यमान होती है, उनके समीप का वातावरण साधुता, सदाचार, सादगी आदि पवित्र वृत्तियो को प्रेरणा देता है। गांधीजी सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धान्त वाले थे। उनकी कर्मभूमि सेवाग्राम वर्धा मे जाकर व्यक्ति सादगी की ओर प्रेरणा पाता था। स्व० वर्णी बाबा के पास ईसरी आश्रम मे जाने वाले बडे व्यक्ति भी वहाँ पुद्गल की महिमा न देखकर अध्यात्मका रस पान करते थे। स्व० आचार्य शिरोमणि शान्तिसागर महाराज के पुण्य चरणो मे पहुँचने वाला व्यक्ति अद्भुत शान्ति, सयम की आकाक्षा, और अवर्णनीय आनन्द प्राप्ति द्वारा स्वय को कृतार्थ करता था; किन्तु सोनगढ की कृत्रिम प्राण शून्य आध्यात्मिकता भावो को समुन्नत न बनाकर पुद्गल के सौन्दर्य की ओर मन को खेचती है। सोनगढ से लौटे हुए यात्री कहते हैं "वहाँ बडा ठाठ है। खाने पीने की व्यवस्था है। वैभव दिखाई पड़ता है।" वहाँ के स्वामीजी की वाणी से क्या लाभ मिला ? इस प्रश्न के उत्तर मे यात्री कहते हैं, "गुजराती मे उपदेश होने से एक शब्द भी हम न समझ सके। "समझ मे आया, समझ में आया" यह वाक्य बहुत बार सुना। हम तो सोनगढ के ऐश्वर्य और ठाठ बाट तथा सुन्दर व्यवस्था से प्रभावित हैं। अब विचारक व्यक्ति सोचे, कि पुद्गल का वैभव-विलास क्या आध्यात्मिक ज्योति को प्रदीप्त कर सकेगा ?

## बहिरात्मपना—

कहते हैं, एक राजा ने अपने राजभवन मे अध्यात्मवादियो को ब्रह्म की चर्चा हेतु आमन्त्रित किया। सब बडी २ चोटी वाले पडित तथा लम्बी २ जटाधारी साधु एकत्रित हो गए। वहाँ एक महाविद्वान अष्टावक्र महोदय पधारे, जिनके सारे अग विकृत रूप मे थे। उन कुरूप मूर्ति को देखकर सब लोग हँसने लगे। यह देखकर अष्टावक्र ने कहा, "राजन् ? क्या यह ब्रह्मज्ञानी विद्वानो की सभा है या चमारो का सम्मेलन है ?" इस पर सब पडित रुष्ट हो गए। उन्होने कहा, "राजन ! यह व्यक्ति मूर्ख सदृश प्रलाप करता है।" अष्टावक्र ने अपने वक्तव्य का खुलासा करते हुए कहा, "चमार चमडे को देखता है। उसी प्रकार मुझे देखकर हास्य करने वालो

ने मेरे चर्ममय भौतिक शरीर को ही ब्रह्म समझ लिया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि इस शरीर के भीतर निवास करने वाली परम ज्योति रूप सच्चा ब्रह्म है। सच्चे आत्मज्ञानियों की दृष्टि भीतरी तत्व पर रहती है।

## भौतिकता का प्रदर्शन—

जिसके जीवन में सादगी, सदाचार, सत्य तथा संयम शोभायमान होता है, वह व्यक्ति पुद्गल की चमक दमक को व्यर्थ की वस्तु मानता है। फ्रीडम एट मिड नाईट ( Freedom At Midnight ) अंग्रेजी पुस्तक में गांधी जी की सादगी का बड़ा मधुर चित्रण हुआ है। लार्ड माउन्टवेटेन अन्तिम वाईसराय ने भारत के विभाजन के पूर्व बापू की गंभीर चर्चा वाइसरीगल भवन में हुई थी। गांधीजी, जिन्हें चर्चिल ने 'अर्धनग्न फकीर' (Half Naked Fakir) कहा था, सादगी से शोभायमान हो चर्चा करते थे। उनके खाने पीने की सामग्री बर्तन आदि में जरा भी वैभव का प्रदर्शन नहीं था। उन्हें देख लार्ड माउन्टवेटेन की आत्मा अत्यन्त प्रभावित हुई थी। गांधी जी ट्रेन में तृतीय श्रेणी में चला करते थे। उनकी सारी चेष्टाओं में वैभव शून्यता दिखती थी। इनके विपरीत हमारे कानजी बाबा की सारी प्रवृत्तियों में पुद्गल के वैभव का प्रदर्शन होता है। बढ़िया से बढ़िया कार, गद्दे तथा अन्य सामग्री महन्त सदृश ठाठ-बाट को बताती है। यह भौतिकता का इन्द्र जाल सूचित करता है कि वह आत्मा सच्ची आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत दूर है। महान योगी ऋषि पूज्यपाद ने समाधि शतक में कहा है।

> बहिस्तुष्यति मूढात्मा पिहितज्योतिरन्तरे।
> तुष्यन्त प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्त कौतुक ॥ ६० ॥

अतः प्रकाश के ढँक जाने पर मूढात्मा—मिथ्यादृष्टि जीव बाहरी पदार्थों में सन्तुष्ट होता है। प्रबुद्ध आत्मा बाह्य पदार्थों के प्रति उत्कण्ठा रहित होता हुआ अपनी आत्मा में सन्तोष धारण करता है।

उचित बात तो यह है कि वैभव के प्रदर्शन के बदले गुणों के माध्यम से आत्मा का महत्व प्रकाशित होना चाहिए। पंजाब केसरी लाला लाजपतराय ने धन कुबेर सेठ घनश्यामदास बिड़ला को एक पत्र लिखा था,

"I wish that people should love you for your virtues other than those connected with your riches"—मैं चाहता हूं लोग तुम्हारे धन के कारण नहीं, तुम्हारे सद्गुणों के कारण तुमसे प्रेम करें। (In the shadow of the Mahatma-P. 20)

**परिग्रह का प्रभाव—**

सोनगढ का वातावरण अपरिग्रह, सत्य, शील, सयम आदि सम्बन्धी पुण्य विचारो के स्थान मे परिग्रह की महत्ता को हृदय पर अकित करता है। यथार्थ मे वह सु-वर्ण पुरी है। सच्ची स्व-वर्ण पुरी नहीं है। वहा आत्मा के वाची 'स्व' के स्थान में धन रूप पर्याय वाची 'स्व' दिखाता है। सस्कृत मे स्व शब्द आत्मा तथा धन का वाचक कहा गया है। जिसके हृदय सिंहासन पर जड तत्त्व का सौन्दर्य विराजमान है, उसका चुनाव रागवर्धक तथा विलासिता पोषक सामग्री का रहेगा। प्रबुद्ध तत्त्व-ज्ञानी की मनोदशा दूसरे प्रकार की होती है।

**मार्मिक बात**—एक उपयोगी कथानक है। राजा श्रेणिक के पुत्र वारिषेण राजकुमार दिगम्बर श्रमण हो गए थे। उनका बालसखा पुष्पडाल भी दिगम्बर हो गया था, किन्तु उसका मन स्वच्छ नहीं हो पाया था। उसका चित्त बारम्बार अपनी एकाक्षी स्त्री की ओर जाया करता था। उसका जीवन विशुद्ध बनाने की दृष्टि से वारिषेण मुनिराज राजगृह आए। उन्होने अपनी धार्मिक माता चेलना महारानी को सदेश भिजवाया कि जब वे राजमदिर पहुंचे, वहा उनकी पूर्व की स्त्रियाँ सुन्दर श्रृंगार युक्त उपस्थित रहे। माता चेलना बडी चतुर थी। पुत्र का मन कही तपस्या से चलायमान तो नही हो गया है, इसकी परीक्षा हेतु राजभवन मे मुनि वारिषेण के बैठने को एक स्वर्ण का आसन और दूसरा काष्ठ का आसन रखा गया। वारिषेण महाराज काष्ठ के आसन पर बैठे। उससे माता चेलना का सन्देह दूर हो गया। पुष्पडाल मुनि को उद्बोधित करते हुए वारिषेण महाराज ने कहा, "मैं इन स्त्रियो को, जो देवागनाओ के समान हैं, त्याग चुका हूँ। आश्चर्य है तेरा मन अपनी कानी स्त्री मे आसक्त है। इस कुशल प्रयोग से पुष्पडाल की मानसिक मलिनता दूर हो गई और वे यथार्थ मे सच्चे मुनि बन गए।

इस कथानक से यह बात स्पष्ट होती है, कि यदि सोनगढ के बाबा के हृदय मे सम्यक्त्व का प्रकाश होता, तो वे मगन वाहिनी कार मे ठाठ और वैभव के साथ भ्रमण न करते, अपने पूर्व के सदाचार का त्याग न करते। जैसे वारिषेण मुनि ने सुवर्ण का आसन छोडकर काष्ठ का आसन स्वीकार किया था, उसी प्रकार के सादगी और साधुना के वातावरण से सोनगढ़ पवित्र होता। खेद है कि इसके विपरीत वहाँ परिग्रह की, परिग्रही की तथा शान शौकत की पूजा होती है, जो यह स्पष्ट करते है कि वहाँ सजीव अध्यात्मवाद का पूर्णतया अभाव है। आगम तथा परंपरा के विपरीत उपदेश, प्रचार तथा सम्यक्त्व के आयतन रूप निर्ग्रन्थ गुरु के प्रति भद्रता विहीन वाणी का प्रयोगादि सूचित करते है, कि वहाँ सम्यक्त्व के नाम पर नकली प्रदर्शन है।

## तत्त्व चर्चा से विमुखता क्यो ?

सत्य प्रेमी व्यक्ति सदा तत्त्व चर्चा के लिए उद्यत रहता है। तत्त्व चर्चा स्वाध्याय रूप अन्तरंग तप का अंग है। समन्तभद्र, अकलंक आदि दिगम्बर जैन महर्षियो ने तत्त्व चर्चा द्वारा जैन धर्म को गौरवान्वित किया है। अनेकांत विद्या से सुसज्जित विद्वान् सदा से विचारो के आदान प्रदान का स्वागत करता है। कमजोर पक्ष वाला व्यक्ति तत्त्व चर्चा के मैदान मे आने से भय खाता है। वह आत्मबल हीन व्यक्ति मौन का शरण ले अपनी झूठी मान, प्रतिष्ठा की रक्षा करता हुआ पाया जाता है। अभी फलटण मे २ जनवरी १९७५ को भारत के प्रसिद्ध विद्वान्, त्यागी, मुनि, आचार्य तथा अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति एकत्रित हुये थे। समाज मे एकता, सौमनस्य तथा सहृदयता की भावना से सोनगढ के कानजी भाई से विचार विमर्श हेतु एक प्रस्ताव पारित कर दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री नवनीतलाल भाई जवेरी को भेजा गया था। वहाँ से यह उत्तर आया, "पूज्य स्वामी जी का प्रवास कार्यक्रम निश्चित हो गया है। वे तीन चार माह बाहर रहेंगे।" समस्त भारत के जैनो की ओर से चर्चा हेतु स्वामी जी क्या अपने प्रवास मे किसी भी स्थान मे चर्चा के लिए व्यवस्था नही कर सकते है ? आवश्यक कार्य आ जाने पर सभी समझदार व्यक्ति अपने कार्यक्रम मे समुचित परिवर्तन करते है। धर्म चर्चा के लिए तो सत्यान्वेषी को प्रमुखता प्रदान करनी थी।

पत्र में एक बड़ी मनोरंजक बात लिखी है : "वाद-विवाद में पड़ना सोनगढ़ का उद्देश्य नहीं है।" आर्य समाजी लोग जब जैन धर्म पर आक्षेप करते थे, तब जैन विद्वान सदा अनेकान्त सिद्धान्त के ध्वज को उन्नत रखने हेतु शास्त्रार्थ के लिए तैयार रहते थे। इस प्रसंग में स्व० वादिगज केसरी न्यायवाचस्पति गुरु गोपालदास जी का नाम स्मरण योग्य है, जो तबियत ठीक न रहने पर भी सिंह के समान प्रतिपक्षी के मुकाबले को तैयार रहते थे। धर्म चर्चा करना यदि सोनगढ़ का उद्देश्य नहीं है, तो क्या उद्देश्य है?

उन्होंने लिखा है "एक बार तत्त्व चर्चा आचार्य शिव सागर महाराज के सान्निध्य में हो चुकी है", तो क्या अब दुबारा चर्चा करने में हानि होगी? चर्चा की अग्नि में सत्य पक्ष रूपी सोने की दीप्ति वृद्धि को प्राप्त होगी। सोना यदि खोटा है, तो वह अवश्य परीक्षण से भय खावेगा?

विशेष बात—सोनगढ़ पथी जिन कानजी बाबा को सद्‌गुरुदेव कहते है, जिन्होंने विदेह में यहाँ आकर जन्म लिया तथा जो साक्षात् सर्वज्ञ तीर्थंकर की वाणी सुन चुके हैं, उनकेसाथ कही भी चर्चा नही हुई है। स्वामी जी तथा उनके निकटवर्ती साथी रामजी भाई आदि भक्तगणों से तत्त्व चर्चा या विचारो के आदान प्रदान का अवसर ही नही आया। यह अपूर्व अवसर आया, तो उससे लाभ लेने को सोनगढ के बाबा तथा उनके अनुयायी तैयार नही हुए। इससे कानजी मत की भीतरी स्थिति को समझदार सहज ही अवगत कर सकता है।

**धर्म गुरुओ का आदेश—**

आगम मे आचार्य परमेष्ठी की स्तुति की गई है। वे अपनी आत्मा समुन्नत बनाते हुए भव्य जीवो को मिथ्यान्धकार से निकालकर धर्म के प्रकाश-मय पथ मे लगाते है। वीरसेन आचार्य ने धवला टीका मे आचार्य परमेष्ठी के विषय मे कहा है।

तिरयण खड्ग णिहाए णुत्तारिय मोह सेण्ण सिर णिवहो।
आइरिय राय पसियउ परिवालिय भविय जियलोओ ॥

रत्नत्रय रूप तलवार के प्रहार से मोह की सेना के शिरो का उच्छेद करने वाले तथा भव्य जीवो का परिपालन करने वाले आचार्य महाराज

प्रगत हो। 'दिगम्बर जैन समाज के भीतर घुसकर ज्ञान, दान, दण्ड, भेद नीति का अवलम्बन लेकर कानजी स्वामी ने अपने नए पंथ की वृद्धि हेतु जोर-शोर से काम शुरू कर दिया है। अपने मत के प्रचार हेतु तथा तीर्थों के ऊपर अपना प्रभुत्व कायम करने के उद्देश्य से अ. भा. दि. जैन तीर्थ कमेटी के मुकाबले कुन्दकुन्द कहान तीर्थ ट्रस्ट कमेटी के लिए दिगम्बर जैन समाज से धन इकट्ठा करना शुरू कर दिया और काफी धन राशि इकट्ठी भी हो गई है। कुछ लोगों के द्वारा समाज में आतंक प्रचार भी जोर से प्रारम्भ हो गया। अविवेकी अथवा लालची कुछ धनिकों को भी अपने प्रचार में सहायक बना लिया गया है। यहाँ तक लिखने की धृष्टता शुरू हो गई, कि चारित्र चक्रवर्ती महान आचार्य शांतिसागर महाराज का भी आशीर्वाद कानजी को प्राप्त था। आचार्य शांतिसागर महाराज के जीवन का निकट से वर्षों अध्ययन करने के कारण हमने एक विज्ञप्ति निकाली 'आचार्य शांतिसागर महाराज द्वारा कानजी पंथ की समीक्षा", जो २७ अक्तूबर १९७७ के जैन गजट में छपी थी।

समाज की अत्यन्त माननीय पूज्य विभूतियों में सबसे पुरातन तपोवृद्ध आचार्य रत्न देशभूषण महाराज हैं। स्व० प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री, स्व० हिन्दू समाज गौरव जुगलकिशोर बिरला आदि उनके भक्त रहे हैं। आज भी उनका व्यक्तित्व असाधारण है। उत्तर भारत में विशाल साधु संघ नायक उच्च चरित्र, निस्पृही तथा निर्भीक आचार्य धर्मसागर महाराज की कीर्ति सारे देश में व्याप्त है। आचार्य विमल सागर महाराज विशिष्ट सिद्धि सम्पन्न भद्र, तत्वज्ञानी ऋषि के रूप में विख्यात हैं। इस प्रकार अनेक आचार्यों ने कानजी पंथ को दिगम्बरत्व का घोर विरोधी घोषित किया है। इन धर्म गुरुओं ने अनेकांत शासन तथा धार्मिक लोगों के हितार्थ जो पवित्र भावना से प्रेरित हो आदेश दिया है, इस कृपा के लिए समाज उनका ऋणी है। उनका आदेश 'स्याद्वाद चक्र" प्रवर्तन ही है।

कर्तव्य—आगम तथा मूलाम्नाय के प्रेमियों का अब यह कर्तव्य हो जाता है, एकान्तवाद की जहरीली हवा से दिगम्बर जैन समाज को बचाने के लिए संगठित होकर जोरदार प्रचार करें। इस कार्य में धर्म रक्षा हेतु तन, [illegible] आचार्य शांतिसागर महाराज [illegible] मन, धन, से तत्पर होना चाहिये। आचार्य शांतिसागर महाराज

शासन के एक जैन कर्मचारी ने कहा था, "जैन धर्म की रक्षा करो। वह धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा।" सच्चे धर्म की अपार क्षमता है।

धम्मो मंगल मुक्किट्ठ अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो॥

"धर्म श्रेष्ठ मगलरूप है अर्थात् वह पापो का नाशक है तथा पुण्य प्रदाता है। वह धर्म अहिंसा, सयम तथा तपस्वरूप है। जिसका मन निरन्तर धर्म की ओर लगा रहता है, उसे देवता भी प्रणाम करते है।"

जैन जयतु शासनम्

जिससे हमे कर्मो के क्षण-क्षण मे होने वाले बन्ध के विषय मे स्पष्ट रूप से परिज्ञान हो। उन्होने दृष्टान्त देकर अपना भाव इस प्रकार स्पष्ट किया था।

एक राज पुरोहित का मरण हो गया। उसके विद्याशून्य पुत्र को राज दरबार मे जगह न मिलने से वह धन हेतु राजमहल मे चोरी को घुसा। उसने हीरा, मोती, सोना आदि कीमती पदार्थ नही चुराए, केवल बाहर रखे भूसे के टोकने को चुराया। दूसरे दिन राजा के प्रश्न पर कि तुमने हीरा, सुवर्ण आदि न चुराकर भुसा क्यो चुराया? पडित पुत्र ने कहा 'राजन्! मेरे पिताजी ने मुझे कुछ सूत्र सिखाये थे। हीरा, सोना आदि चुराने पर अनेक भवो मे सूअर, सर्प, गधा आदि की हीन पर्यायो मे कष्ट भोगना पड़ता है। इससे मैंने उनकी चोरी नही की। भुसा चुराने मे कोई दोष है, ऐसा सूत्र मुझे नही सिखाया गया। अत मैंने भुसा की चोरी की।' इस उत्तर से राजा के हृदय मे दया पैदा हुई। उसने उसको शिक्षा प्राप्त कराकर राज पडित बनाया। इस कथा को कहकर आचार्यश्री ने कहा 'हमे आत्म कल्याण हेतु यह जानना चाहिए कि किन-किन खोटे कर्मो के द्वारा जीव दुख पाता है। इस कारण बध शास्त्र का ज्ञान जरूरी है। कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार की गाथा २९३ मे कहा है

वधाण च सहाव वियाणिओ अप्पणो सहाव च।
वधेसु जो विरज्जदि सो कम्म विमोक्खण कुणई॥

वध के स्वरूप को पहिले समझो, आत्मा का स्वभाव अवगत करो। इसके पश्चात्, बन्ध के कारणो का परित्याग करो, ऐसा करने वाला मोक्ष पाता है।

कोरे अध्यात्मवाद के प्रचार मे आत्मा की शुद्धता की ही चर्चा समयसार के नाम पर चला करती है। वध के कारण मिथ्यादर्शन, असयम, प्रमाद कषाय तथा योग की तरफ ध्यान ही नही दिया जाता है। शराब का व्यापारी, चमडे का व्यापारी मासाहार का प्रचारक, शराव पीने वाला, मास भक्षी, परस्त्री सेवी, गरीबो का शोषक तथा करोड़पति बने हुए व्यक्ति इनके पास पहुँच कर यह नही सुनते कि ऐसा हीनाचरण उन्हे सुअर आदि पशु पर्याय तथा नरकादि मे

गिराएगा । उनको उच्च स्थान देकर यह बताया जाता है कि वे सिद्ध हैं । कर्मो के न कर्ता हैं, न भोक्ता है । वे तो ज्ञाता दृष्टा मात्र है । उन्हे कुन्दकुन्द स्वामी बारह अनुप्रेक्षा मे सचेत करते हैं ।

> एक्को करेदि पावं विसयणि—मित्तेण तिव्वलोहेण
> णिरयतिरियेसु जीवो तस्स फलं भुंजदे एक्को ।।१५।।

तीव्र लोभवश विषय के निमित्त से एक जीव पाप कर्म का बन्ध करता है, वही जीव अकेला नरक तथा पशु पर्याय मे उस पाप का फल भोगता है ।

अतः सर्व प्रथम पाप कर्म मे फँसाने वाले कुकृत्यो का वर्णन प्रथमानुयोग, चरणानुयोग आदि शास्त्रो द्वारा जानना चाहिये । समयसार को पाठ्यक्रम मे प्राथमिकता देना, यह स्पष्ट करता है, कि कानजी गुरु परम्परा के स्थान मे स्वच्छंद प्रवृत्ति का प्रचार कर रहे है । अभी मैंने दिल्ली के समीपवर्ती स्थानो की यात्रा की, मै एक प्रसिद्ध नगर मे आया, वहाँ सोनगढ़ वालो का प्रचार कार्य चलता है । उस जगह बहुत जैनी मांस, मदिरा सेवन करते है, ऐसा मुझे बताया गया । सोनगढ़ के प्रचारक उस पापाचार के विरुद्ध मौन रहकर ज्ञाता दृष्टा आतमराम का गीत गाया करते हैं । यह पद्धति इस तथा पर की कुगति का कारण है ।

मार्मिक बात—कानजी हिंसा झूठ, चोरी, अतिलोभ आदि के त्याग से दूर रहकर स्वयं को अव्रती कहते हुए नहीं सकुचाते । कोई व्रत लेता है तो वे अनुमोदना न कर यह कह दिया करते है, कि यह बेचारा व्रतो के चक्कर मे फँस गया । सपत्नि मोतीलालजी जवेरी बम्बई, ने मुनि दीक्षा ली । वे १०८ सुबुद्धिसागरजी मुनि बने । यह समाचार जब स्व. श्री नवनीतलाल भाई जवेरी अध्यक्ष सोनगढ़ ट्रस्ट ने कानजी बाबा को कहा, तब बाबा ने यह नहीं कहा, कि यह बड़ा अच्छा हुआ । उन्होंने नवनीत भाई को क्या कहा, यह बात नवनीत भाई ने श्री राजमल भाई जवेरी को इस प्रकार बताई 'देख, वह चक्कर मे फँस गया । यदि हमारे पास आता तो चक्कर मे न फँसता' । ऐसी कानजी की प्रवृत्ति है ।

इसके विपरीत आचार्य शान्तिसागरजी महाराज यथाशक्ति व्रत पालने हेतु प्रेरणा देते हैं । १९५५ में २६ सितम्बर को सल्लेखना काल में आचार्यश्री ने कुन्थलगिरि मे कहा था—'आत्मा का चिंतन करो । संयम

धारण करो, डरो मत।' आचार्यश्री कहते थे, व्रत धारण करके तुम कुगति से बचोगे, स्वर्ग मे जाकर वहा से तुम तीर्थंकर के समवशरण मे पहुच सकोगे और तीर्थंकर की दिव्यध्वनि सुनकर आत्मतत्त्व का रहस्य भली प्रकार समझ सकोगे।

एक दिन मैने आचार्यश्री से पूछा—"महाराज कोई व्यक्ति व्रत नही लेता, अव्रती जीवन हेतु लोगो को प्रेरणा देता है, उसका भविष्य कैसा है ?"

आचार्य महाराज ने कहा था, 'उस जीव की होनहार खोटी है। जिसकी नरकायु का बध होता है, वह व्रत नही धारण कर पाता।' इस गुरु वाणी रूपी दर्पण मे उन सबका भविष्य देखा जा सकता है जो बहुत आरम्भ, परिग्रह मे लिप्त हैं। झूठ, चोरी, हिंसा आदि के कुकर्मों मे फँसे हैं। यदि क्षायिक सम्यक्त्वी महावीर भगवान तथा महान महर्षियो के समीप निरन्तर निवास करने वाले राजा श्रेणिक असयम के कारण नरक गये, तब हमारे ऐसे सेठो, व्यापारियो, पढे-लिखे लोगो को नरक पतन से कौन बचा सकता है ? उपरोक्त कथन के प्रकाश मे सोनगढ़ पथी तीर्थंकर कहे जाने वाले व्यक्ति के विषय मे आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का अभिप्राय स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है।

महापाप—कानजी बाबा एकात पक्ष का पोषण करते हैं। उनका समर्थक आचार्य शान्तिसागरजी महाराज को बताना महापाप है। उदाहरणार्थ, जहा कानजी निमित्त कारण को कार्य साधक नही मानते, वहाँ आचार्यश्री निमित्त-उपादान कारण युगल को महत्व प्रदान करते थे। महाराज ने कहा था, 'निमित्त कारण भी बलवान है। सूर्य का प्रकाश मोक्षमार्ग मे निमित्त है ? यदि सूर्य प्रकाश न हो तो मोक्ष मार्ग ही न रहे। प्रकाश के अभाव मे मुनियो का विहार, आहार आदि कैसे होगे' ? उन्होने कहा 'कुम्भकार के बिना केवल मिट्टी से घट नही बनता। इसके पश्चात् उसे अग्नि पाक भी आवश्यक है।'

धार्मिक समाज से अनुरोध है, कि दुर्गतिप्रद एकान्तवाद के प्रचारको के मायावी प्रचार के फदे मे न फँसो। आत्मा का हित स्याद्वाद दृष्टि तथा रत्नत्रय धर्म का शरण ग्रहण करने मे ही है। [ जैन गजट मे प्रकाशित ]

—※—

# वर्तमान दिगम्बर जैनाचार्यों का आदेश

समस्त दिगम्बर जैन समाज को यह विदित ही है कि २ जनवरी १९७७ को फलटण में जो प्रस्ताव दिगम्बर जैन धर्म की रक्षा हेतु तथा एकता बनाए रखने के निमित्त परम पूज्य दिगम्बराचार्य श्री १०८ देश भूषण जी महाराज पूज्य आचार्य कल्प १०८ श्री सुबल सागर जी महाराज प० पू० १०८ मुनिराज श्री सिद्धसेन जी महाराज आदि पूज्य मुनियों आर्यिकाओं, क्षुल्लकों, भट्टारकों, विद्वानों व श्रीमती श्रावकों के सान्निध्य में पास हुआ था कि सोनगढ़ कहान पंथ के अनुयायिओं से मिलकर बातचीत की जाये और समाज में व्याप्त असंतोष को शीघ्र दूर किया जावे। वह मार्ग आज तक सरल नहीं हुआ। आरातीय दिगम्बर जैनाचार्यों की आर्ष परम्परा पर दिन प्रतिदिन कुठाराघात चलाया जा रहा है। वार्ता का द्वार बन्द ही नहीं किया गया, स्पष्टतया ठुकरा दिया गया। ऐसी स्थिति में हम धर्म रक्षार्थ यह घोषित करते हैं कि **'सोनगढ़ का कहान पंथ दिगम्बर जैन धर्म के विपरीत है और उसके अनुयायी सच्चे जिनानुयायी नहीं हैं। उसके कार्यकलाप भी दिगम्बरत्व के घोर विरोधी हैं।'**

अतः समस्त दिगम्बर जैन समाज अपने पावन तीर्थक्षेत्रों, जिन मन्दिरों, जिनवाणी एवं जिन गुरुओं के संरक्षणार्थ शीघ्र से शीघ्र उचित कदम उठावें तथा सजग रहकर धर्म रक्षार्थ तत्पर होवें ऐसा हमारा स्पष्ट आदेश है।

## दिगम्बर जैन धर्मरक्षार्थ सरल उपाय

❋ समस्त दिगम्बर जैन मन्दिरों में प्राचीन पद्धति से ही चारों अनुयोगों का वाचन होवे, नई विपरीत शैली से वाचन न होने देवें। इसी तरह सोनगढ़ कहान पंथ के अनुयायियों द्वारा उनकी शैली से लिखे हुए ग्रंथों को मन्दिरों में नहीं रहने दें।

❊ प्राचीन अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई को ही हमे मान्यता देना है तथा उसी को सबल बनाकर दिगम्बर जैन तीर्थों की रक्षा सदैव की भाँति करते रहना है।

❊ श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र सुरक्षा ट्रस्ट अथवा अन्य भी कोई समानातर तीर्थरक्षा कमेटी को कोई भी किसी भी प्रकार सहयोग नही देवे, और न उनके साथ सहकार करें तथा हम भारतवर्षीय दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष और महामत्री आदि को भी आदेश देते हैं कि वे इसका पूर्णतया पालन करें।

वर्तमान सभी त्यागी वर्ग से भी हमारा निवेदन है कि धर्म और आर्षपरम्परा सरक्षणार्थ वे भी जब तक उपर्युक्त धर्म सकट दूर न होवे तब तक अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार त्याग करें तथा धर्म और आर्षपरम्परा की रक्षा के लिये विद्वत् वर्ग एव श्रीमत वर्ग सौहार्द्र स्थापित करते हुए व्यक्तिगत मतभेदो को दूर करके दृढता से अग्रसर हो।

दिगम्बर जैन समाज मे प्रचलित पूजा पद्धति जहा जिस रूप में चलती है उसमे तेरह पथ बीस पथ का भेदभाव करके बाधा न डाली जाये और न पथवाद का कोई प्रचार व प्रसार किया जाये। तथा जो जिस मान्यता से मानता है उसे स्वतत्रता से पालन करने दिया जाये। कुछ पथ विरोधी तत्व पथ का प्रचार प्रसार करके सामाजिक एकता को भग कर रहे हैं जो अनुचित है। समाज ऐसे तत्वो मे पूर्ण सावधान रहे।

समाज इस आदेश को जन-जन मे प्रचारित करे।

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| श्री १०८ | आचार्य | देशभूषण | महाराज | ससघ | कोथली |
| श्री १०८ | ,, | धर्मसागर | ,, | ,, | मदनगज,किशनगढ |
| श्री १०८ | ,, | विमल सागर | ,, | ,, | टिकैतनगर |
| श्री १०८ | ,, | सन्मति सागर | ,, | ,, | इटावा |
| श्री १०८ | ,, | सुमति सागर | ,, | ,, | मोरेना |
| श्री १०८ | आचार्यकल्प | सुबल सागर | ,, | ,, | शेडवाल |
| श्री १०८ | ,, | श्रुत सागर | ,, | ,, | सुजानगढ |
| श्री १०८ | ,, | ज्ञानभूषण | ,, | ,, | फुलेरा |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| श्री १०८ | ,, | सन्मत सागर | महाराज | ससघ | फिरोजाबाद |
| श्री १०८ | ,, | सुव्रत सागर | ,, | ,, | ,, |
| श्री १०८ | उपाध्याय | मुनि सिद्धसेन | ,, | ,, | फलटण |
| श्री १०८ | मुनि | सुबाहु सागर | ,, | ,, | पोदनपुर बम्बई |
| श्री १०८ | ,, | महाबलसागर | ,, | ,, | सदलगा |
| श्री १०८ | ,, | श्रेयांससागर | ,, | ,, | अजमेर |
| श्री १०८ | ,, | अजितसागर | ,, | ,, | सुजानगढ |
| श्री १०८ | ,, | दया सागर | ,, | ,, | दाहोद |

प्रचारक एवं प्रकाशक.

## अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद्

अ० भा० शा० वी० दि० जैन सि० सरक्षणी सभा, श्री महावीर जी

अ० भा० दि० जैन युवा परिषद्, बडौत एव बम्बई

श्री दि० जैन त्रिलोक शोध सस्थान, हस्तिनापुर

—※—

# "स्याद्वाद-चक्र" पर अभिमत

## चारित्र चूड़ामणि श्री १०८ आचार्य विमलसागर महाराज

स्याद्वाद चक्र पुस्तक आद्योपान्त पढ़ी। इसमें एकान्त पक्ष का खूब अच्छी तरह आगम द्वारा खंडन किया गया है। पुस्तक सुन्दर है। इसके प्रचार की जैन समाज में बहुत जरूरत है। इसके द्वारा एकान्तवादी वर्ग की दृष्टि में सुधार न हुआ तो समझना चाहिये, कि उनका मिथ्यात्व जटिल है।

## श्री १०८ उपाध्याय मुनि विद्यानंद जी महाराज

पं० सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर जैन दिवाकर जैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ और बहुश्रुत विद्वान हैं। मुनि भक्ति एवं साहित्याराधना उनके जीवन के दो मुख्य उद्देश्य रहे हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में जैन धर्म के श्रद्धा पक्ष को विशेषत उजागर किया है। उनकी प्रस्तुत कृति 'स्याद्वाद चक्र' में भी जैन धर्म के प्रति उनकी सहज श्रद्धा की विशेष अभिव्यक्ति मिलती है।

## वाणीभूषण पूज्य मुनिराज श्री अभिनंदनसागर महाराज

'स्याद्वाद चक्र' ग्रन्थ को मैंने ध्यान से पढ़ा। आगम रूप समुद्र का मथन कर यह रचना की गई है। आजकल के बौद्धिक समस्या को सुलझाने की इस ग्रन्थ में उपयोगी सामग्री है। इसका मनन करने वालों का कल्याण होगा।

## विद्यावारिधि, न्यायालंकार पंडित शिरोमणि शास्त्री,
## पं० मक्खनलाल जी मुरैना,

'स्याद्वाद चक्र' पुस्तक में दिवाकर जी ने निश्चय और व्यवहार दोनों नयों को आगम मान्य, प्रामाणिक एवं यथार्थ तत्व सिद्ध किया है। उन्होंने उपादान-निमित्त, पुण्य-पाप, जिनवाणी का महत्व आदि विषयों पर बहुत

ही महत्वपूर्ण विवेचन किया है। धर्म दिवाकर जी ने अपनी अगाध विद्वत्ता द्वारा जो समाज का मार्ग दर्शन इस पुस्तक मे किया है, वह प्रशसनीय है।

पुस्तक को आद्योपान्त पढने वाले के भाव धर्म मे दृढ होते हैं। देव गुरु शास्त्रो को दूषित तथा लाछित ठहराकर उनका अवर्णवाद करने वाले कानजी भाई और कानजी पथ से घृणा हो जाती है। पुस्तक समाज की आँखें खोलने वाली अत्युपयोगी है। कानजी भक्त तथा उनके विरोधी दोनो को पढना चाहिये।

## पडितरत्न श्री मल्लिनाथ न्यायतीर्थ शास्त्री, मद्रास

धर्म सरक्षण की भावना से प्रेरित हो लेखक महोदय ने वडे परिश्रम से इस महान ग्रन्थ की रचना की है। इसमे अविचारपूर्ण सिद्धान्त विरुद्ध तथा दिगम्बर जैन धर्म को समूल नष्ट करने वाले सोनगढ के स्वामी जी के अधर्मरूपी सिद्धान्तो का महान आचार्य कुन्दकुन्द की वाणी के आधार पर लेखक ने खण्डन किया है। धर्म श्रद्धालु पाठकगण इसको पढकर दृढ श्रद्धानी वनें तथा धर्म की रक्षा करें।

## पं० मोतीलाल जैन कोठारी, सिद्धान्त वाचस्पति एम. ए., फलटण

यह पुस्तक मुमुक्षु जीवो के लिये वडे हित की चीज है। इसका दैनिक स्वाध्याय आत्म-परिणामो की विशुद्धि में निश्चित सहकारीकारण होगा ऐसा मेरा दृढ विश्वास है। आत्महितेच्छु इसका स्वाध्याय कर और प्रतिपादित विषय का चिन्तन कर आत्महित कर लेंगे ऐसी आशा रखता हूँ।

## डा० नन्दलाल जैन, M. Sc., Ph. D ( England ), रीवां

'मेरी यह आधारभूत धारणा है कि जैन धर्म मे प्रतिपादित श्रावकाचार को जाने-माने एव अपनाए विना केवल समयसार की चर्चा-वार्ता से लाभ के स्थान पर हानि की ही सभावना अधिक है। इसी विचार को दृष्टि-पथ पर रखते हुए यह रचना "स्याद्वाद चक्र" लिखी गई है। आशा है, वैचारिक हठो का परित्याग कर, अनेकान्त को ध्यान रख, व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण हेतु लिखी गई इस कृति का स्वागत होगा।

**डॉ० सुरेशचन्द्र जैन, M. A., Ph. D.**
अध्यक्ष हिन्दी विभाग शासकीय क० महाविद्यालय, उज्जैन

"आज का युग-मानस जीवन के जिन वात-चक्रो मे दिशाहीन होकर भटक रहा है, उसे एक ऐसे सबल की आवश्यकता है, जो उसे उनकी टूटी हुई धुरी से जोड़कर स्वस्थ और स्वच्छ दिशा दे सके। "स्याद्वाद-चक्र" निश्चय ही युग-पीढ़ी का सकल्प सिद्ध होगी। जैन धर्म के जिन दो चरणों— स्याद्वाद और अनेकान्त, पर उसका सम्पूर्ण अस्तित्व विद्यमान है, उन्हीं चरणो की स्वस्थ गति है। विश्वास है "स्याद्वाद-चक्र" बुद्धिजीवियों एव श्रद्धालुओं के लिए मार्ग-निर्देशिका ही नहीं, पाथेय भी बनकर उनके गतव्य की पहिचान करा सकेगी। परम श्रद्धेय दिवाकर जी का, इस अपूर्व प्रणयन के लिए हार्दिक अभिनन्दन है।"

**डॉ० हरिशंकर दुबे, M. A, M. Com, Ph. D**
ए. पी. एस. विश्वविद्यालय, रीवा

"भारतीय धर्मों की यह विशेषता रही है कि इनमे आध्यात्मिक विचारों को तप और त्याग से समलकृत किया गया है। श्री दिवाकर जी ने इसी बात को प्रतिपादित करने की दिशा मे इस ग्रन्थ के माध्यम से स्तुत्य प्रयास किया है। आशा है वैचारिक हठ तथा एकांतिक विचार त्याग कर अध्यात्म और चरित्र के "मणि कांचन योग" को चरितार्थ करेंगे।"

**डॉ० धरमचन्द्र जैन, M. A, Ph. D**
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी अध्ययन विभाग, शा० महाविद्यालय, सबवा

"जैन सिद्धान्तों के मनीषी विद्वान आदरणीय दिवाकर जी द्वारा प्रस्तुत 'स्याद्वाद-चक्र' हमारे साहित्य और चिन्तना की मूल्यवान कड़ी है।"

**श्री बालचन्द्र जैन, M. A.**
डिप्टी डायरेक्टर पुरातत्त्व विभाग, मध्यप्रदेश शासन

"श्रद्धेय पं० सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर जैन जगत के मनीषी विद्वान हैं। उन्होंने "स्याद्वाद चक्र" का प्रणयन किया है। आशा है, इस सामयिक ग्रन्थ को बिना किसी पूर्वाग्रह के पढ़ा जायेगा।"

**डॉ० के. सी. मलैया,** M. A., M. Ed., Ph. D.
प्रो० शासकीय शिक्षा महाविद्यालय, जबलपुर

"श्रद्धेय पडित सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर द्वारा लिखित "स्याद्वाद चक्र" जैन धर्म के विवेकपूर्ण विचारो का ऐसा सामयिक सग्रह है, जो समस्त ससारी जीव के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। दिवाकर जी की यह नवीनतम कृति जैन बन्धुओ एव अन्यो के लिए उचित दिशा निर्देशन करती है। पडित जी का यह प्रयास अत्यन्त स्तुत्य एव लाभकारी है।"

**डॉ० कौशलचन्द्र जैन,** M. A., M. Com., Ph. D, LL B.
डी. एन. जैन कालेज, जबलपुर

"पूज्य दिवाकर जी श्रद्धा और तर्क की पतवार लेकर अपने पाठक को ज्ञान-सागर मे नौका-नयन का आनन्द प्रदान करते रहते हैं। उनकी यह नवीनतम कृति भला इस दिशा मे कैसे पीछे रहती ? निश्चय ही जीवन के परम लक्ष्य की उपलब्धि मे यह सार्थक प्रमाणित होगी।"

**धर्मरत्न श्री महताबसिंह,** बी. ए एल-एल. बी, जौहरी, दिल्ली

"प० दिवाकर जी की सभी रचनाएं आगमानुसार तथा हृदय स्पर्शिनी होती हैं। 'स्याद्वाद चक्र' द्वारा एकान्तवाद का भली प्रकार निराकरण हुआ है। उनके अन्य ग्रन्थो के समान यह रचना भी कल्याणकारी तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण है।"

—